श्री हरि :

जीवनोपयोगी प्रवचन

स्वामी रामसुखदास

श्री हरि :

जीवनोपयोगी प्रवचन

स्वामी रामसुखदास

२०२४

श्री हरि :

नम्र निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक में पूज्यवर स्वामीजी श्री रामसुखदासजी महाराज द्वारा दिये गए जीवनोपयोगी कुछ प्रवचनों का संग्रह है। ये प्रवचन भगवत्प्राप्ति की ओर अग्रसर होने के अभिलाषी सत्संगियों एवं साधकों के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनमें गूढ़ तत्वों को बड़ी सरल रीति से समझाया गया है। पाठकों से निवेदन है कि इन प्रवचनों का अध्ययन एवं मनन करके इनसे लाभ उठाएं।

नववर्ष,
जनमाष्टमी, २०४०

विनीत
प्रकाशक

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

श्री हरिः

मानव जीवन का लक्ष्य

हम विचार करके देखते हैं तो स्पष्ट होता है कि केवल मनुष्य ही परमात्म प्राप्ति का साधक है। जैसे बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्याश्रम है, वह केवल पढ़ाई के लिये है। इसी तरह से ८४ लाख योनियों में मनुष्य शरीर ब्रह्म विद्या के लिये है। केवल ब्रह्म विद्या की पढ़ाई के लिये ही मनुष्य शरीर है। क्योंकि और जगह इसका मौका नहीं है, न वह योग्यता है, न कोई अवसर है। अन्य योनियों में विवेक नहीं होता। देवताओं में समझने की ताकत है; परन्तु वहां भोग बहुत हैं। भोगी आदमी परमात्मा में नहीं लग सकता। जहां भी देखो, ज्यादा धनी आदमी सत्संग में नहीं लगते। जो बहुत गरीब हैं, जिनके पास खाने-पीने को नहीं है, वे भी सत्संग में नहीं लगते हैं। उन्हें रोटी–कपड़े की चिन्ता रहती है। उसी तरह नरकों के जीव बहुत दुःखी हैं। बेचारे उनको तो अवसर ही नहीं है। देवता लोग भोगी हैं, उनके पास बहुत सम्पत्ति है, वैभव है, पर वे परमात्मा में नहीं लगते, क्योंकि सुख–भोग में लगे हुए हैं, वहीं उलझे हुए हैं। तो मनुष्य शरीर ऐसा बीच का है जो परमात्मा की प्राप्ति में लग सकता है। उसमें योग्यता है। भगवान ने अधिकार दिया है। मनुष्य शरीर की महिमा बहुत ज्यादा है, देवताओं से भी अधिक है।

देवताओं का शरीर हमारी अपेक्षा बहुत शुद्ध होता है। हम लोगों का शरीर बड़ा गन्दा है। जैसे कोई सूअर हो और

वह मैले में भरा हुआ हो। यदि वह हमारे पास आ जाता है तो उसको छूने का मन नहीं करता, दुर्गन्ध आती है। ऐसे ही हम लोगों के शरीर से देवताओं को दुर्गन्ध आती है। इतना दिव्य शरीर है उनका। हमारे शरीर में पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता है। देवताओं के शरीर में तेजस—तत्त्व की प्रधानता है। परन्तु परमात्मा की प्राप्ति का अधिकार जितना मनुष्य शरीर को मिलता है, इतना उनको नहीं मिलता। इस वास्ते मनुष्य-शरीर की महिमा है।

उत्तरकाण्ड में श्री काकभुशुण्डिजी से गरूड़ जी प्रश्न करते हैं कि सबसे उत्तम देह कौनसा है? तो कहा मनुष्य शरीर सबसे उत्तम है क्योंकि "नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही"। चर-अचर सब जीव इस मनुष्य शरीर की याचना करते हैं, मांग रखते हैं। ऐसा कहकर आगे कहा—

नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी।
ज्ञान बिराग भगति सुभ देनी।। (मानस ७/१२०/५)

तो मनुष्य देह नरक, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष)—ये तीन देने वाली है। इसके सिवाय परमात्मा का ज्ञान इस शरीर में हो सकता है। संसार से वैराग्य हो सकता है और भगवान की श्रेष्ठ भक्ति इसमें हो सकती है। इस शरीर में ये ६ बातें बताई। मनुष्य शरीर एक बड़ा जंक्शन है। इस पर चाहे जिस तरफ आप जाओ, गाड़ी मिलती है। मनुष्य जिस तरफ जाना चाहे उस तरफ जा सकता है। ऐसी मनुष्य शरीर की महिमा है। इस महिमा को कहते हुए पहले ही नाम लिया—

नरक, स्वर्ग, अपवर्ग नसैनी। नरकों में जा सकते हैं—यह

महिमा है कि निन्दा ! मनुष्य शरीर ऐसा है, जिसमें नरक मिल सकते हैं—तो यह निन्दा हुई। इससे तत्त्व क्या निकला ? ऊँची से ऊँची और नीची से नीची चीज मिल सकती है, इस मानव शरीर से। यह महिमा है।

वास्तव में महिमा है शरीर के सदुपयोग की। इसका उपयोग ठीक तरह से किया जाय तो भगवान की श्रेष्ठ भक्ति मिल जाय, मुक्ति मिल जाय, वैराग्य मिल जाय, सब कुछ मिल जाय। ऐसी कोई चीज नहीं जो मनुष्य शरीर से न मिल सके। गीता में आया है।

'यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः'।
(गीता ६/२२)

जिस लाभ की प्राप्ति होने के बाद कोई लाभ शेष न रहे। मानने में भी नहीं आ सकता कि इससे बढ़कर कोई लाभ होता है और जिसमें स्थित होने पर वह गुरुतर दुःख से भी विचलित नहीं किया जा सकता। किसी कारण शरीर के टुकड़े-टुकड़े किए जायं तो टुकड़े करने पर भी आनन्द है, शान्ति है, मस्ती है। उससे वह विचलित नहीं हो सकता। उस सुख में कमी नहीं आ सकती।

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्'।
(गीता ६/२३)

इतना आनन्द होता है कि दुःख वहां रहता ही नहीं। ऐसी चीज प्राप्त हो सकती है, मानव–शरीर से ! मनुष्य शरीर की ऐसी महिमा तत्त्व-प्राप्ति की योग्यता होने के कारण से है।

मनुष्य शरीर को प्राप्त करके ऐसे ही तत्त्व की प्राप्ति करनी

चाहिये। वह न करके झूँठ, कपट, बेईमानी, विश्वासघात, पाप करके नरकों की तैयारी करलें तो कितना महान दुःख है।

यह ख्याल करने की बात है कि मनुष्य–शरीर मिल गया। अब भाई अपने को नरकों में नहीं जाना है। ८४ लाख योनियों में नहीं जाना है। नीची योनि में क्यों जावें? चोरी करने से, हत्या करने से, व्यभिचार करने से, हिंसा करने से, अभक्ष्य भक्षण करने से, निषिद्ध कार्यों को करने से मनुष्य नरकों में जायगा। कितना अवसर भगवान ने दिया है कि जिसे देवता भी प्राप्त नहीं कर सकते, ऐसा ऊँचा स्थान इससे प्राप्त किया जा सकता है–इसी जीवन में, इस जीवन के रहते-रहते। प्राणों के रहते-रहते बड़ा भारी लाभ लिया जा सकता है। दुःख वहां पहुँचता ही नहीं। बहुत शान्ति, बड़ी प्रसन्नता, बहुत आनन्द–इसमें प्राप्त हो जाता है। ऐसे प्राप्ति का अवसर है मानव शरीर में! इस वास्ते इसकी महिमा है। इसका प्राप्त करके जो नीच काम करते हैं, वे बहुत बड़ी भारी भूल करते हैं। मामूली नहीं, बहुत बड़ी गलती है।

जैसे कोई बढ़िया चीज मिल जाय तो उसका लाभ लेना चाहिये। किसी को पारस मिल जाय तब लोहे को छुआने से सोना बन जाय। ऐसा पारस मिल जाय तो बैठा चटनी पीसे उससे। यह पारस पीसने के लिए थोड़े ही है। पारस पत्थर से चटनी पीसना ही नहीं, कोई माथा ही फोड़ले तो पारस क्या करे? इस दृष्टि से मानव–शरीर मिला–इससे पाप, अन्याय, दुराचार करके नरकों की प्राप्ति कर लेना अपना सिर फोड़ना है। संसार के भोगों में लगना–यह चटनी पीसना है।

भोग कहां नहीं मिलेंगे ? सूअर हैं—इनके एक साथ दस-बारह बच्चे होते हैं। अब एक दो बच्चे पैदा कर लिये तो क्या कर लिया ? कौनसा बड़ा काम कर लिया ? धन कमा लिया तो कौनसा बड़ा काम कर लिया ? सांप के पास बहुत धन होता है। धन के ऊपर सांप रहते हैं। तो उसके पास भी धन है। धन कमाया तो कौनसी बड़ी बात हो गई ? ऐश—आराम में सुख देखते हैं और कहते हैं कि इसमें सुख भोग लें। बम्बई में मैंने कुत्ते देखे हैं। उन्हें बड़े आराम से रखा जाता है। बाहर जावें तो मोटर और हवाई जहाज में जावें। मनुष्यों में भी बहुत कम को ऐसा आराम मिलता है, जो कुत्ते को मिलता है। भाग्य में है तो कुत्तों को भी मिल जायगा। कौन सा काम बाकी रह जायगा, जिस वास्ते मनुष्य शरीर नष्ट किया जाय। भोगों के भोगने में, संसार का सुख लेने में, धन कमाने में मनुष्य शरीर बर्बाद कर देना है। कितनी बड़ी भूल की बात है। झूँठ, कपट, बेईमानी करके मनुष्य नरकों की तैयारी कर लेता है, यह महा पतन की बात है। कितना ऊँचा शरीर मिला है मनुष्य को। उस शरीर में आकर ऐसा काम करले ! तो सावधान रहना चाहिये कि बड़े से बड़ा काम हमें करना है, बढ़िया से बढ़िया काम हमें करना है। यह काम दूसरी योनि में नहीं हो सकता।

मनुष्य शरीर में किये हुए पापों का ८४ लाख योनियों में भोग होता है। सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि—ये चारों युग बीत जाते हैं, ८४ लाख योनि भोगते-भोगते और नरकों के कुण्ड भोगते-भोगते। फिर भी मनुष्य शरीर में किया हुआ पाप बाकी पड़ा रहता है। संचित पाप पड़ा रहता है। बीच में भगवान कृपा करके मनुष्य शरीर देते हैं। संचित पाप और

पड़े हुए हैं। भोगने पर भी समाप्त नहीं होते, इतने महान पाप हैं, जो मनुष्य शरीर में बनते हैं। यह मनुष्य शरीर है जिससे परमात्मा की प्राप्ति करलें। अनन्त ब्रह्माण्ड जिसके फुरणा-मात्र से रचित होते हैं, मण्डित होते हैं, वे परमात्मा तुम्हारी आज्ञा मानने के लिये तैयार हो जाते हैं। "ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भर छाछ पै नाच नचावें।" उन गोपियों के हृदय में भगवान के प्रति प्रेम होने के कारण वे कहती हैं 'लाला छाछ दूंगी, थोड़ा नाचो।' तो नाचने लग जायँ। लाला बंसी बजाओ, छाछ पिलाऊँगी।' अब बोलो छाछ के बदले वे परमात्मा नाचने और बंसी बजाने को तैयार! इतना ऊँचा पद, इस मनुष्य-शरीर से मिल सकता है। इस शरीर की प्राप्ति करके हम फिर करलें नरकों की तैयारी-महान दुःखों की तैयारी, कितनी बड़ी भारी गलती है! ऐसा मनुष्य-शरीर मिल जाय तो बड़े से बड़ा लाभ लेना चाहिये।

जैसे वृन्दावन में आ गये हो तो भगवान के दर्शन करो, जमुना जी में स्नान करो। वहां के रहने वालों से पूछो कि ज्यादा लाभ की बात कौनसी है। ज्यादा पुण्यदायक, उद्धार करने वाली चीज कौनसी है। वृन्दावन में आए हो तो वृन्दा-वन का आनन्द लो। अब वृन्दावन में आकर नाटक, सिनेमा देखते हो-अरे भाई! यहां क्यों आए? बम्बई कलकत्ता में बहुत बढ़िया सिनेमा है। यहां तो तीर्थ-स्थल है। भगवान के दर्शन करो। जहाँ कीर्तन होता हो, कथा होती हो-ऐसी जगह जाओ और विशेष लाभ लो। वृन्दावन में आए हो ना? इसी तरह से मानव शरीर में आये हो तो लाभ ले लो विशेष। यहां पर वही काम करते हो जो पशु-पक्षी करते हैं, वही खाना-पीना, वही बाल-बच्चे पैदा हो गये। यह तो भैया कुत्ते बन

जाओ तो तैयार, सूअर बन जाओ तो तैयार, गधे बन जाओ तो तैयार, कौआ बन जाओ तो तैयार। वह चीज कौनसी बाकी रहेगी। इन चीजों के लिये आए हो क्या मनुष्य शरीर में? मनुष्य शरीर खराब करते हो।" यह शरीर क्यों प्राप्त किया? भगवान ने कृपा कर शरीर दिया है तो इस शरीर से होने वाले वे लाभ लो, जो दूसरे शरीर में हो नहीं सकते।

"बड़ भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।" (मानस ७/४२/४)

मनुष्य शरीर देवताओं को दुर्लभ है, ऐसा ग्रन्थों में कहा है। ऐसा दुर्लभ शरीर, जिसको प्राप्त करके केवल परमात्म-तत्त्व की प्राप्ति करनी चाहिये। केवल परमात्म तत्त्व में ही सच्चे हृदय से लगना चाहिये। एकदम लग जाना चाहिये। मौका है भाई। जैसे मनुष्य शरीर दुर्लभ है, वैसे कलियुग भी दुर्लभ है। सतयुग, त्रेता, द्वापर में समय चला जाता है। जितना मौका कलियुग में मिलता है, उतना अन्य युग में मौका नहीं मिलता। ऐसे कलियुग में मौका मिला। उस कलियुग को प्राप्त करके भोगों में लग गए अथवा पापों को करने में लग गए, अन्याय करने में लग गए। शास्त्र की दृष्टि से अन्याय, हम भी विचार करके देखें तो अन्याय, लौकिक दृष्टि से अन्याय, लोग देख लें तो शर्म आवे। ऐसे-ऐसे कामों के बीच में लग जाय मनुष्य शरीर प्राप्त करके। कितनी हानि की बात है! तो हम क्या करें।

आज दिन तो हुआ सो हुआ। गलती हुई तो हुई। आज से ही दृढ़ निश्चय करलो कि समय बरबाद नहीं करेंगे, पाप व अन्याय नहीं करेंगे। जल्दी से जल्दी तत्त्व की प्राप्ति कैसे हो? कैसे उस तत्त्व का बोध हो? कैसे उस परमात्मा से प्रेम हो

जाय ? भगवान के चरणों में ऐसी लालसा लगाओ। क्या हमारा भी प्रेम हो सकता है ? क्या इस शरीर से कल्याण हो सकता है ?

ध्यान देकर सुनें। इस शरीर से ही कल्याण हो सकता है। कल्याण भी आप कर सकते हो। लखपति बन जाओ आपके हाथ की बात नहीं, मकान-इमारत हो जाय आपके हाथ की बात नहीं। संसार में यश, प्रतिष्ठा, मान, आदर, सत्कार हो जाय आपके हाथ की बात नहीं है। परमात्म तत्त्व की प्राप्ति हाथ की बात है। इसमें सब स्वतंत्र हैं। मनुष्य मात्र इसमें स्वतंत्र है, कोई परतंत्र नहीं, क्योंकि बड़े भारी लाभ के लिये मनुष्य शरीर मिला है। परमात्म तत्त्व की प्राप्ति के लिये ही मानव-शरीर मिला है। उसको प्राप्त करना खास काम है। मनुष्य ध्यान नहीं देता है। रामायण में आया है—

कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही।। (मानस ७/४३/३)

इस चौपाई पर आप थोड़ा ध्यान दें। भगवान विशेष कृपा करके मानव शरीर देते हैं। इसका अर्थ क्या हुआ ? भगवान ने इस जीव पर विश्वास किया कि इसको मनुष्य शरीर दिया जाय, जिससे इसका दुःख मिट जाय, मेरी प्राप्ति हो जाय, इसका कल्याण हो जाय। इस भावना से मानव शरीर दिया, विशेष कृपा करके। इसमें तत्त्व समझना क्या है ? जब भगवान की यह भावना है कि मेरी प्राप्ति करले तो थोड़ा सा हम भी काम करें तो भगवान का संकल्प सच्चा होने ही वाला है।

ध्यान नहीं देता मनुष्य। भगवान कृपा करके मानव शरीर देते हैं—इसका अर्थ यही है कि परमात्मा की प्राप्ति हो

सकती है। भगवान ने विश्वास किया। यदि यहाँ आकर जीव भगवान की प्राप्ति नहीं करता है, तो भगवान के साथ विश्वासघात करता है। यहां आकर के पाप, झूँठ, कपट करता है तो बड़ा भारी नुकसान है।

निश्चय करलो कि आज से ही पाप नहीं करेंगे। अन्याय नहीं करेंगे, और भगवत् तत्त्व की प्राप्ति करेंगे। जैसे व्यापारी व्यापार खोजता है, इस तरह से परमात्म तत्त्व की प्राप्ति के लिए खोज में लगना चाहिये। आपको कोई सन्त महात्मा मिल जाय, कोई भगवत् प्राप्त पुरुष मिल जाय तो हरेक से पूछो भगवान कैसे मिलें ? भगवान के चरणों में प्रेम कैसे हो ? जीवन-मुक्ति कैसे हो ? इस बात की लालसा जगाओ तो—

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू। (मानस १/२५८/३)

सुख भोग और संग्रह की भावना—यह दो बाधायें हैं जिससे मनुष्य भगवान की ओर नहीं चलता।

× × × ×

संतों के दर्शन, भाषण व चिंतन से शान्ति मिलती है।

श्री हरि :

सत्संग की महिमा

"प्रथम भगति संतन्ह कर संगा," (मानस ३/३४/४) संत महात्माओं का संग पहली भक्ति है। "भक्ति सुतंत्र, सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ।।" (मानस ७/४४/३) भक्ति स्वतन्त्र है, सम्पूर्ण सुखों की खान है। कहते हैं:—

"सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला।" (मानस १/२/४) सम्पूर्ण मंगल की मूल सत्संगति है। वृक्ष में पहिले मूल होता है, और अन्तिम लक्ष्य फल होता है। तो सत्संगति मूल भी है, और फल भी है। जितने अन्य साधन हैं—सब फूल पत्ती हैं—मूल और फल के बीच में रहने वाली चीज हैं। तो सत्संगति में ही सब साधन आ जाते हैं। इस वास्ते सत्संग की बड़ी भारी महिमा है।

सुन्दरदासजी महाराज कहते हैं:—

"संत समागम करिये भाई।

यामें बैठो सब मिल आई, नाना विधि....करीजै।

भिन्न भिन्न सब नाम धराई,

जाके सुगन्ध लगे चन्दन की, चंदन हूंते बार न लाई।

संत समागम करिये भाई।"

संत समागम करना चाहिये। यह नौका सदृश है, इसमें बैठ कर पार हो जायेंगे। सत्संग चन्दन की तरह पवित्र बनादे, और पारस रूपी सत्संग से लोहा कंचन हो जाय। लोहे से कंचन बनादे, ऐसा सत्संग है। सुन्दरदास जी महाराज कहते हैं—

"और उपाय नहीं तिरने का सुन्दर काढहि राम दुहाई।" रामजी की सौंगध दे दी कि कल्याण का और कोई उपाय नहीं है। यह अचूक उपाय है। इस वास्ते सत्संग में जाकर बैठ जायें तो निहाल हो जायें। सत् का संग करो। जहाँ भगवान की चर्चा हो, सत्चर्चा हो, सत्चिन्तन हो, सत्कर्म हो और सत्संग हो तो सत् के साथ सम्बन्ध हो जाय। सत् अर्थात् परमात्मा के साथ सम्बन्ध हो जाय। बस निहाल हो जाय जीव।

जीव को जितने दुःख आते हैं, सब असत् के संग से आते हैं। विनाशी चीजों का संग करने से ही यह दुर्दशा होती है, और अविनाशी का संग करते ही स्वतः निहाल हो जायगा क्योंकि वह भगवान का अंश है। "ईस्वर अंस जीव अबिनासी, चेतन अमल सहज सुखरासी।" (मानस ७/११६/१) अतः सत्संग से, सत् का संग होने से, सत् का प्रेम होने से सत् प्राप्त हो जाता है? कबीर साहब की वाणी में—

"हंस मिल्या सुख होई रे हंसा, हंस मिल्या सुख होई।
हंसा सूँ सरवर मिला, और सरवर हंस मिला।
हंसा सरवर खेलता सहजा रहे समाय॥"

सत्संग मिल जाय, परमात्मा का संग मिल जाय तो निहाल हो जाय।

सत् का जहां सम्बन्ध होता है, वह सत्संग है। भगवान के साथ जो संग है, वह सत्संग है। असली संग होता है, असत् के त्याग से। असत् के द्वारा भी सत्संग होता है, जैसे सत्चर्चा करते हैं तो बिना वाणी से कैसे करें ? सत्कर्म करते हैं तो बिना बाहरी क्रिया से सत्कर्म कैसे करें ? सत् चिन्तन करते हैं तो मन के बिना कैसे करें ? सत्संग में दूसरा नहीं हो तो अपने आप ही में भीतर मिल जाय, तल्लीन हो जाय। सत्संग, सत्चिन्तन, सत्कर्म, सत्चर्चा, और सद्ग्रन्थों के अवलोकन– इन सब का उद्देश्य है सत् की प्राप्ति के लिये असत् को दूर कर दे तो सत् का उद्देश्य पूरा हो जाता है। "सनमुख होई जीव मोहि जबहीं।" असत् से विमुख होने पर सत् का संग हो जाता है। यह राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि जो कूड़ा-करकट भीतर में भरा है, यह सत्संग नहीं होने देता। ऐसा मालूम होता है कि मनुष्य चाहे तो इनका त्याग कर सकता है; परन्तु फिर भी इसे कठिनता मालूम देती है; कब तक ? जब तक पक्का विचार न हो जाय।

पक्का विचार करने पर यह कठिनता नहीं रहती, फिर सुगमता आ जाती है। हमें तो इधर ही चलना है, चाहे जो हो। जो काम करना है उसे शीघ्र कर लीजिये—ऐसा विचार हो जाय तो कार्य पूरा हो जाय। पक्का विचार हो जाय तो कार्य सिद्ध हो जाता है। मन में ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि दोष भरे हुए हैं। बहुत से भाई-बहिन इस बात को जानते ही नहीं है, और जो जानते हैं वे विशेष ख्याल नहीं करते। कई ख्याल करके छोड़ना भी चाहते हैं, लेकिन इसमें सुख लेते रहते हैं। इस वास्ते राग, ईर्ष्या छूटते नहीं, क्योंकि असत् का संग रहता है।

सत् का संग (सत्संग) मिल जाय तो आदमी निहाल हो जाय। जहाँ सत् का संग हुआ वह निहाल हुआ। कारण क्या है ? परमात्मा सत् हैं। दोनों मिल गए तो जयराम जी की। बीच में जितना-जितना असत् का सम्बन्ध है, वही बाधा है।

जैसे कल्पवृक्ष के नीचे जाने से सब काम सिद्ध होते हैं, वैसे ही सत्संग करने से सब काम सिद्ध होते हैं। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष–चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। तो क्या सत्संग से धन मिल जाता है ? कहते हैं कि सत्संग से बड़ा विलक्षण धन मिलता है। रुपया मिलने से तो तृष्णा जागृत होती है, और सत्संग करने से तृष्णा मिट जाती है। रुपयों की जरूरत ही नहीं रहती।

गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरूर्हरेत्।
पापं तापं तथा दैन्यं सद्यः साधुसमागमः ।।

गंगाजी में स्नान करने से पाप दूर हो जाते हैं; पूर्णिमा को चन्द्रमा पूरा उदय होता है, उस दिन तपत (गरमी) शांत हो जाती है; कल्पवृक्ष के नीचे बैठने से दरिद्रता दूर हो जाती है। पर सत्संग से तीनों बातें होती हैं--पाप नष्ट होते हैं, भीतरी ताप मिट जाता है और संसार की दरिद्रता दूर हो जाती है। "चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआँ बेपरवाह, जिनको कछू न चाहिए, सो साहन पति-शाह ।।" सत्संग से हृदय की चाहना भी मिट जाती है। यह बात एकदम सच्ची है, सत्संग करने वाले भाई-बहिन तो इस बात को जानते हैं। बिल्कुल

ठीक बात है, सत्संग से हृदय की जलन दूर हो जाती है।

तू जो चाहता है कि ऐसे हो जाय, वैसे हो जाय तो विचार आता है कि

**"मना मनोरथ छोड़ दे तेरा किया न होय।
पानी में घी नीपजे तो सूखो खाय न कोय॥"
यद भावि न तद्भावि भावि चेन्न हृदन्यथा।
इति चिन्ता विषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते॥**

जो नहीं होना है, वह नहीं होगा और जो होने वाला है, वह टल नहीं सकता, होकर रहेगा. फिर तू क्यों विचार करे कि यह होना चाहिये, यह नहीं होना चाहिये। बस, हाँ-में-हाँ मिलादे। सत्संग एक कला है। सत्संग में कला मिलती है, दुःखों से पार होने की। समुद्र में डूबने वाले को कड़ा हाथ लग ज य, युक्ति मिल जाय तो निहाल हो जाय।

सत्संग में उत्तम विचार मिलते हैं। ज्ञान-मार्ग में तो यहाँ तक बताया है—

**"धन किस लिए है चाहता, तू आप मालामाल है।
सिक्के सभी जिससे बनें, तू वह महा टकसाल है।"**

उस धन के आगे तू इस धन को क्यों चाहता है? धन-ही-धन है। परमात्मा-ही-परमात्मा है; लबालब भरा हुआ है। तू उस धन से धन्य हो जाय। वस परमात्मा का, सत् का दर्शन—यह सत्संग करा देता है।

सत्संग में व्यापार एक ही चलता है, भगवान की बात। उसी को कहना, सुनना, समझना, विचार करना, चिंतन करना। भगवान जिस पर कृपा करते हैं, उसको सत्संग

देते हैं। सत्संग दे दिया तो समझो भगवान के खजाने की बढ़िया चीज मिल गई। जो भगवान के प्यारे होते हैं, वे भगवान के भीतर रहते हैं। यह हृदय का धन है। माता-पिता जिस बालक पर ज्यादा स्नेह रखते हैं, उसको अपनी पूँजी बता देते हैं कि बेटा, देखो यह धन है। ऐसे ही भगवान जब बहुत कृपा करते हैं तो अपने खजाने की चीज (पूँजी) संत महात्माओं को देते हैं—लो बेटा, यह धन हमारे पास है।

सत्संग मिल जाय तो समझना चाहिये कि हमारा उद्धार करने की भगवान के मन में विशेषता से आ गई; नहीं तो सत्संग क्यों दिया ? हम तो ऐसे ही जन्मते-मरते रहते. यह अडंगा क्यों लगाया ? तो यह कल्याण करने के लिये लगाया है। इस वास्ते जिसको सत्संग मिल गया तो समझो उसको भगवान ने निमन्त्रण दे दिया—आ जाओ। ठाकुरजी बुलाते हैं। अपने तो प्रेम से सत्संग करो, भजन स्मरण करो, जप करो। सत्संग करने में सब स्वतन्त्र हैं। सत् परमात्मा सब जगह मौजूद है। वह परमात्मा मेरा है और मैं उसका हूँ, ऐसा मानकर सत्संग करे तो वह निहाल हो जाय।

सत्संग कल्पद्रुम है। सत्संग अनन्त जन्मों के पापों को नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। जहाँ सत् की तरफ गया कि असत् नष्ट हुआ। असत् तो बेचारा नष्ट ही होता है, जीवित रहता ही नहीं। इसने पकड़ लिया असत् को। अगर यह सत् की तरफ जायगा तो असत् तो खत्म होगा ही। सत्संग अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर कर देता है। महान् परमानन्द-पदवी को दे देता है। यह परमानन्द पदवी दान करता है। कितनी विलक्षण बात है। सत्संग क्या नहीं करता ? सत्संग सब कुछ करता

है। "प्रसूते सद्‌बुद्धिम्" । सत्संग श्रेष्ठ बुद्धि पैदा करता है। बुद्धि शुद्ध हो जाती है।

गोस्वामीजी महाराज लिखते हैं:—

"मज्जन फल पेखिअ ततकाला।
काक होहिं पिक बकउ मराला ॥ (मानस १/२/१)

साधु-समाज रूपी प्रयाग में डुबकी लगाने से तत्काल फल मिलता है। कौआ कोयल बन जाता है, बगुला हंस बन जाता है। सत्संग करने से रंग नहीं, ढंग बदल जाता है। जो जबान कौआ की तरह है, वह कोयल की तरह हो जाती है। जो बगुला होता है वह हंस की तरह नीर-क्षीर विवेक करने लगता है। सत्संग से आचरण और विवेक तत्काल बदल जाते हैं। सत्संग मिल जाय तो ये बदल जाते हैं। अगर नहीं बदले तो या तो सत्संग नहीं मिला या सत्संग में आप नहीं गए। दोनों के मिलने से ही काम बनता है। पारस लोहे को सोना बनादे, अगर मिले तब तो। बीच में पत्ता रख दिया तो फिर कुछ नहीं बनने का।

परमात्मा के प्रति व सन्त महात्माओं के प्रति निष्काम भाव से प्रेम करो। भगवान मीठे लगें, प्यारे लगें, अच्छे लगें। क्यों लगें ? क्योंकि वे मेरे हैं, मेरे। बच्चों को मां अच्छी लगती है। क्यों लगती है ? क्योंकि माँ है, मेरी माँ है। ऐसे ही भगवान के साथ अपनापन रहे, तो सत्संग होता है। भगवान् हमारे हैं, हम भगवान् के है। कैसी बढ़िया बात है।

एक सज्जन मिले। वे कहते थे कि तीर्थों का महात्म्य बहुत है। गंगाजी अच्छी हैं, यमुना जी अच्छी हैं, प्रयागराज बड़ा अच्छा है —ऐसा लोग कहते तो हैं, परन्तु किराया तो देते नहीं। किराया दें तो वहाँ जायें। सत्संग में वढ़िया वढ़िया बात सुनते हैं, और किराया भी मिलता है--परमात्मा के धाम जाने के लिये। सत्संग में ज्ञान मिलता है, प्रेम मिलता है, भगवान की भक्ति मिलती है। भगवान् शबरी से कहते हैं, शबरी "प्रथम भगति संतन्ह कर संगा"। यहाँ तेरे को सत्संग मिल गया, यह भगवान की .कृपा है। दण्डक वन था, उसमें वृक्ष आदि सब सूखे हुए थे। उसमें शबरी रहती थी। मतंग ऋषि थे, बड़े वृद्ध संत, कृपा की मूर्ति। उन्होंने शबरी को आश्वासन दे दिया था, कि वेटा, तू चिन्ता मत कर, यहाँ रह जा। ऋषि-मुनियों ने इसका बड़ा विरोध किया, पर संत की कृपा बड़ी विचित्र होती है, अलभ्य होती है। धनी आदमी राजी हो जाय तो धन दे दे, अपनी कुछ चीज दे दे, परन्तु संत कृपा करें तो भगवान को दे दें। उनके पास भगवान रूपी धन होता है। वे सामान्य धन के धनी नहीं होते हैं, असली धन के धनी होते हैं, मालामाल होते हैं, और वह माल ऐसा विलक्षण है कि दानेन वर्धते नित्यम्ः, ज्यों-ज्यों देता है, त्यों-त्यों बढ़ता है। ऐसा अपूर्व धन है। इस वास्ते खुला खर्च करते हैं। खुला भंडार पड़ा हुआ है, अपार, असीम, अनन्त है, जिसका कोई अंत ही नहीं है। भगवान् का ऐसा अनन्त अपार खजाना है। फिर भी मनुष्य मुफ्त में दुःख पा रहे हैं। इसलिये सज्जनों, बड़े आश्चर्य की बात है "पानी में मीन पियासी, मोहि देखत आवै हाँसी। जल बिच मीन, मीन बिच जल है निश दिन रहत पियासी।" भगवान में सब संसार है और सबके भीतर भगवान हैं। उस भगवान से विमुख होते हैं "सनमुख होइ जीव

मोहि जबहीं" तो संत-महात्मा जीव को परमात्मा के सन्मुख कर देते हैं। अरे भाई परमात्मा तो सन्मुख है ही, हमारा प्यारा माता-पिता, भाई-बन्धु, कुटुम्बी, सम्बन्धी --वह सब तरह से अपना है। वे प्रभु हमारे हैं। संत ऐसी बात बतादें और हम वह बात सुनकर पकड़ लें तो बड़ा भारी लाभ होता है। स्वयं हम पकड़ें, और किसी संत-महात्मा के कहने से हृदय से पकड़ें तो उसमें बड़ा अन्तर होता है।

संत-महात्मा जो कहते हैं, उनके वचनों का आदर करो। जमानत भी ली जाती है तो इज्जतदार आदमी की। हर एक की जमानत नहीं होती है। ऐसे ही भगवान के दरबार में संत-महात्माओं की और भक्तों की बड़ी इज्जत है, तभी तो गोस्वामी जी ने कह दिया—

"सत्य वचन, आधीनता, पर-तिय मातु-समान।
इतने पै हरि ना मिलें, तो तुलसीदास जमान॥

तुलसीदासजी की जमानत है। तो संत लोग जमानत दे देते हैं, और वह भगवान के यहाँ चलती है। संतों के यहाँ परमात्मा का बड़ा खजाना रहता है। मुफ्त में धन मिलता है, मुफ्त में, कमाया हुआ, तैयार किया हुआ! सत्संग से यह सब मिल सकता है।

प्रश्न : कुछ लोगों को सत्संग करना सुहाता ही नहीं। इसका क्या कारण है?

उत्तर : पापी का यह स्वभाव है कि उसे सत्संग सुहाता नहीं।

पापवंत कर सहज सुभाऊ।
भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥ (मानस ५/४३/२)

तुलसी कोरे पाप ते, हरि चर्चा न सुहाय।
जैसे ज्वर के ज्वार ते, भूख विदा ह्वै जाय।

मनुष्य को बुखार आ जाता है तो भूख नहीं लगती, अन्न अच्छा नहीं लगता। अन्न अच्छा नहीं लगता तो इसका अर्थ है उसको रोग है। जब पित्त का जोर होता है तो मिश्री भी कड़वी लगती है। मिश्री कड़वी नहीं है, उसकी जीभ कड़वी है। इसी तरह से जिसको भगवान की चर्चा सुहाती नहीं, तो इसका कारण है कि उसे कोई बड़ा रोग हो गया। कथा में रूचि नहीं होती तो स्पष्ट है कि अन्त:करण बहुत मैला है, मामूली मैला नहीं, ज्यादा मात्रा में मैला है। ज्यादा मैला होने पर क्या उसको सत्संग दूर नहीं कर सकता ? सत्संग सब मैलों को दूर कर सकता है; पर मनुष्य पास में ही नही आता। बुखार का जोर होने से अन्न अच्छा नहीं लगता, और मिश्री कड़वी लगती है। कैसे करें ? कड़वी लगे तो भी खाते रहो। मिश्री में खुद में ताकत है कि वह पित्त को शान्त कर देगी, और मीठी लगने लगेगी। ऐसे ही भजन में रुचि नहीं, तो भी भजन करते रहो। भजन करते करते ज्यों-ज्यों पाप नष्ट होते हैं त्यों-त्यों उसमें मिठास आने लगता है। सत्संग में ऐसे लोग आए हैं जो रुचि नहीं रखते थे। पर किसी के कहने से आए, तो फिर विशेषता से जाने लग गए।

प्रश्न : सत्संग प्रतिदिन क्यों किया जाय ?

उत्तर : सत्संग की महिमा क्या कहें ? सत्संग तो रोजाना करने का है, नित्य प्रति करने का है। यह त्यागने का है ही नहीं। सत्संग से सांसारिक बाधायें मिट जाती हैं। कोई बीमार होता है, कोई लड़ाई करता है, किसी को कोई और व्याधा लग जाती है—यह सब तरह तरह के सांप हैं जो काटते

हैं। उनसे जहर चढ़ जाता है तो वह घबरा जाता है। वह अगर सत्संग में जाकर बूंटी सूंघ ले, तो स्वस्थ हो जाय, प्रसन्न हो जाय। चित्त की चिन्ता दूर हो जाय। फिर जाकर संसार का काम करे। काम करते करते उसमें उलझ जाते हैं तो जहर चढ़ जाता है। वह जहर सत्संग में जाने से ठीक हो जाता है। इस तरह करते हुए हमारे जो शत्रु हैं – काम, क्रोध, राग, द्वेष आदि वे सबके सब मर जाते हैं। जैसे अन्न, जल आवश्यक है, सांस लेना आवश्यक है, उसी तरह सत्संग भी प्रतिदिन करना जरूरी है। वह तो रोज की खुराक है। सत्संग से बहुत शान्ति मिलती है, बहुत बीमारियाँ दूर होती हैं। सत्संग सूर्य होता है जो अन्त:करण के अंधकार को दूर कर देता है। उससे पाप दूर हो जाते हैं, बिना पूछे शंकाएं दूर हो जाती हैं। तरह तरह की जो हृदय में उलझनें हैं, वे सुलझ जाती हैं।

सत्संग जहाँ हो जाय, मिल जाय तो समझना चाहिये कि भगवान ने विशेष कृपा की। भगवान शंकर ने दो ही बात मांगी–**पद सरोज अनपायनी भगति, और 'सदा सत्संग।'**

प्रश्न : सत्संग से मुफ्त में लाभ मिलता है सो कैसे ?

उत्तर : सत्संग से जो लाभ होता है वह साधन से नहीं होता। साधन करके जो परमात्म तत्त्व को प्राप्त करता है, वह कमा कर धनी बनता है और सत्संग से वह गोद चला जाता है, कमाया हुआ धन मिल जाता है। संतों से कमाया हुआ धन मिलता है तो गोद जाने वाले को क्या जोर आवे। आज कंगाल और कल लखपति। वह तो जा बैठा गोद में। कमाये हुए धन का मालिक हो जाता है। सत्संग के द्वारा ऐसी चीज मिलती है, जो वर्षों तक साधन करने से भी नहीं

मिलतीं। इस वास्ते सत्संग मिल जाय तो अवश्य करना चाहिये। मुफ्त में कल्याण होता है, मुफ्त में।

प्रश्न : नाम जप से अधिक सत्संग की महिमा कही--इसका क्या कारण है ?

उत्तर : सत्संग करने वाला नाम जपे बिना रह नहीं सकता। नाम जप स्वाभाविक ही होगा।

प्रश्न : सत्संग न मिले तो क्या करें ?

उत्तर : भगवान से प्रार्थना करे हे नाथ! हे नाथ! करके पुकारो। भगवान सर्व समर्थ हैं। उनको पुकारते जाओ वे सत्संग की व्यवस्था बैठा देंगे। इसके अलावा सत् शास्त्रों का अध्ययन करे।

प्रश्न : किसी ने एक संत से पूछा कि मनुष्य का सुधार करने में सबसे बढ़िया उपाय क्या है? अपने अनुभव के आधार पर बतावें।

उत्तर : मेरे को जितना लाभ सत्संग से हुआ है, उतना किसी साधन से नहीं हुआ। अच्छे संग में रहने से बड़ा भारी लाभ होता है, जिसकी कोई सीमा नहीं। सत्संग मत छोड़ो, जिस सत्संग से अपनी हृदय की गांठ खुलती है, आत्मसात होता है, प्रकाश मिलता है, ऐसा सत्संग छोड़ो मत। सब कुछ मिल जाता है पर "संत समागम दुर्लभ भाई।"

प्रश्न : सत्संग से प्रकाश कैसे मिलता है!

उत्तर : सत्संगति का अर्थ होता है प्रकाश। जैसे हम कहीं जाते हैं और रात्रि का समय हो तो मोटर का प्रकाश सामने ही रहता है। ऐसा नहीं होता कि प्रकाश पीछे रह

जाय और मोटर आगे निकल जाय। प्रकाश आगे ही रहेगा और वह प्रकाश चलने के लिये रास्ता बताता है। ऐसे ही सत्संगति से मनुष्य को प्रकाश मिलता है कि हम कैसे चलें ? सत्संग की बातें केवल याद करलें, पुस्तकों में पढ़ लें, लोगों से कह दें और हम उसके अनुसार चलें नहीं तो प्रकाश को तेज करने मात्र से ही रास्ता नहीं कटता। लाइट कम भी है, परन्तु जहाँ तक रास्ता दिखता है वहाँ तक हम चले जायें तो उससे आगे दिखने ही लगेगा। यह नियम है। परन्तु एक जगह खड़े खड़े कितनी ही तेज लाइट करलें गन्तव्य स्थान दिखेगा नहीं। ऐसे ही सत्संगति के द्वारा हमें जो प्रकाश मिल जाय उसके अनुसार अपना जीवन बनावें, उसके अनुसार चलें। तभी वह प्रकाश सार्थक होता है। जीवन न भी बनावें तो भी यह प्रकाश निरर्थक नहीं जाता क्योंकि जो सत्य चीज है, वह प्रकट हो ही जाती है। सत्य की विजय होती है, झूंठ की विजय ही नहीं होती। परन्तु यदि सत्य का आदर करें तो बहुत जल्दी और विशेष लाभ ले लेते हैं। तो सत्संग की बातें अपने आचरण में लाना चाहिये।

---

१. भगवान की कथा प्रेम से सुनने से राग मिटता है, और भगवान से प्रेम होता है। भक्त और महापुरुषों की कथाओं से चित्त शुद्ध होता है। सत्संग और सत्शास्त्रों से बहुत लाभ होता है।
२. मान, बड़ाई, आदर और वस्तु दूसरों को देने की हैं। भजन, सत्संग स्वयं करने का है।

श्री हरि :

दुर्गुणों का त्याग-दृढ़ निश्चय से

आप खूब ध्यान दें, मनुष्य से दोष उस समय होता है जब वह किसी से कुछ चाहता है। अपना अभिमान होता है और सुख चाहता है, संयोग-जन्य सुख की अभिलाषा भीतर होती है। अर्जुन ने पूछा कि मनुष्य पाप करना नहीं चाहता, फिर पाप क्यों हो जाता है ? तो भगवान् ने यही उत्तर दिया है कि उसके मन में सुख-भोग की, संग्रह की कामना है, चाहना है। जब तक यह चाहना होगी, तब तक पाप होता ही रहेगा। सावधान होने पर भी फिर गफलत हो जायेगी, फिर करेगा।

तो इसके मिटने का उपाय क्या हैं ? असली उपाय भीतर का प्रायश्चित है, पश्चाताप हो जाय जलन पैदा हो जाय। जिस पाप के करने से सुख होगा, उस सुख की अपेक्षा पश्चाताप अधिक हो जाय और यह प्रतिज्ञा कर ले कि कभी किसी को धोखा दूंगा नहीं, ऐसी भूल कभी नहीं करूंगा, ऐसा पक्का विचार कर ले और उस पर डटा रहे तो पहले किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है। परन्तु यदि विचार भी करता रहता है फिर भी वैसा ही पाप करता रहता है तो वह नष्ट नहीं होता। नया नया पाप होता रहता है, फिर पतन होता ही चला जाता है। पक्का पश्चाताप हो जाय कि अब ऐसा काम नहीं करोंगे, इस पर डटा रहेगा तो उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा, निर्मल हो जायेगा। जितना पश्चाताप अधिक

होगा, और जितना अपना विचार पक्का होगा, उतनी जल्दी अंतःकरण शुद्ध होगा। ये दो चीजें बहुत दामी हैं, बड़ी श्रेष्ठ हैं, अन्तःकरण को निर्मल करने वाली, और पापों का नाश करने वाली हैं।

एक बात का ख्याल रखना है कि मनुष्य स्वयं परमात्मा का अंश है, स्वयं दोषी नहीं है, यह संयोग-जन्य पदार्थों को लेकर के ही दोषी होता है। अपना अभिमान और कामना, ये दो महान् पतन करने वाले हैं और इनसे लाभ कोई होने वाला नहीं हैं। तो यह खूब समझने की बात है। हमारे इस बात का विचार आता है मन में, कि भाई लोग ध्यान नहीं देते। संसार से सुख की कामना और लोभ रहता है कि मेरे लाभ हो जायेगा, इतना ले लूं, इतना रख लूं, इतना मार लू दूसरों का धन, इससे मेरे सुख हो जायेगा, ऐसा भाव है, इसके समान धोखा देने वाला कोई वैरी है ही नहीं। इतना इससे धोखा खाता है। और सज्जनों! आपके जचे, न जचे; पर मेरी यह बात विचारी हुई है कि लाभ कोई-सा ही नहीं है और नुकसान बहुत भारी है। परन्तु मनुष्य को लाभ दिखता है और नुकसान दिखता नहीं। यह अवस्था है।

करहिं मोह बस नर अघ नाना।
स्वारथ रत परलोक नसाना।। (मानस ७/४०/२)

स्वार्थ में रत रह कर नाना प्रकार के पाप करता है। मूढ़ता भरी है भीतर से, वहम रहता है कि मैं ठीक कर रहा हूं, पर कर रहा है अपने आप अपनी हत्या, अपना पतन और अपना नुकसान।

सज्जनों! कृपा करके आज से अन्याय छोड़ दो, पाप मत करो। अगर शांति, सुख चाहते हो तो दूसरों का हक

लेने का विचार मत रखो नहीं तो कोई बचा नहीं सकेगा, महान् कष्ट में जाना ही पड़ेगा क्योंकि पापों को पकड़ लिया आपने, पाप के बाप को भी पकड़ लिया। एक कहानी आती है। एक अच्छे पण्डित जी थे, अपने घर पर रहते थे, कथा कहते थे, लोगों को सुनाते, पढ़ाते थे। एक दिन पण्डित जी की स्त्री ने कह दिया कि महाराज ! पाप का बाप कौन है ? तो पण्डित जी बता नहीं सके। बड़ा दुःख हुआ कि मैं इतना पढ़ा-लिखा पण्डित हूँ और यह तो कुछ नहीं जानती और मुझे इसके प्रश्न का भी उत्तर आया नहीं। तो पश्चाताप हुआ और उठ करके चल दिए कि तेरे प्रश्न का उत्तर दिए बिना मैं तेरे हाथ की रोटी नहीं खाता। स्त्री ने अनुनय-विनय किया; परन्तु पण्डित जी ने कहा कि नहीं। स्त्री को दुःख हुआ परन्तु विचार किया कि सुधार हो जाय तो अच्छी बात है, तो चुपचाप रही। वह जाने लगा, बीच में एक वैश्या का घर था। वह पण्डित जी को जानती थी। उसे इस बात का आश्चर्य आया कि पण्डित जी अनमना होकर जा रहे हैं। सामने जाकर उसने विनय किया कि महाराज आप कहां जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं और क्या बात है ? ऐसा आप म्लान मुख क्यों हो रहे हैं ? तो पण्डित जी बोले कि मुझे बड़ा दुःख है। "किस बात का" ? वैश्या ने पूछा। उत्तर दिया कि एक अपढ़ स्त्री ने प्रश्न किया और उत्तर मुझे आया नहीं। इसलिए काशी जाता हूँ वहाँ पढ़ाई करूंगा। पण्डितों से पूछूंगा। फिर आऊंगा घर पर। वैश्या ने पूछा कि बात क्या है ? पण्डित जी ने उत्तर दिया कि मेरी स्त्री ने पूछा कि पाप का बाप क्या है ? मैं बता नहीं सका। वह बोली यह बात तो मैं बता दूंगी। आप वहां क्यों जाते हैं ? वहां जाने, आने में, अध्ययन में कितना समय लगेगा। यह तो बड़ी सीधी बात है, मैं बता

दूंगी। पण्डित जी बोले कि वहुत अच्छी बात है, हमें तो बात मिलनी चाहिए। वह बोली कि आप ठहर जायें। पण्डित जी को ठहरा दिया और जाकर सौ रुपये भेंट कर दिए। बोली कि मेरी प्रार्थना है कि मेरे घर पर आप भोजन कर लें, भोजन चाहें आप स्वयं बना लें। पण्डित जी ने विचार किया कि इसमें दोष क्या है ? स्वीकार कर लिया निमन्त्रण। पण्डित जी चले गए। उसने भोजन की सारी सामग्री तैयार कर ली। चौका देकर, रसोई साफ करके सामग्री सामने रख दी और पण्डित जी से रसोई बनाने के लिए कहा। पण्डित जी ने कहा—ठीक है। वैश्या ने सौ रुपये और पण्डित जी के सामने रखे और कहा कि महाराज ! आप पक्की रसोई तो पाते ही है, दूसरे के हाथ की, मैं बना दूं अच्छी तरह से। इतनी मुझ पर कृपा हो जाय। पण्डित जी ने सोचा कि पक्की रसोई पाने में क्या है ? पक्की रसोई पाते तो हैं ही, चलो इसके हाथ की पा लें। खीर, मालपुआ, पूरी, साग सब ठीक तरह से बना ली। बनकर तैयार हो गई तो कहा, पण्डित जी महाराज ! अब पावो। उनके सामने रसोई परोस दी। सामने लाकर सौ रुपये रख दिये और बोली कि एक कृपा हो जाय, मेरे हाथ से ग्रास ले लो। पण्डित जी ने सोचा इसमें हर्ज क्या है, इसके हाथ की बनाई हुई रसोई। उस से न लेकर, इस हाथ से ले लें, इसमें फर्क क्या है ? पण्डित जी ने स्वीकार कर लिया। ग्रास बनाकर मुंह में देने लगी तो जैसे ही पण्डित जी ने मुंह खोला तो पण्डित जी के मुंह पर जोर का थप्पड़ मारा और बोली कि अभी तक होश नहीं आया, खबरदार मेरा जो एक भी दाना खाया। मैं आपका धर्म-भ्रष्ट नहीं करना चाहती। आपके शंका थी कि पाप का बाप कौन है ? शास्त्रों में वैश्या का अन्न कितना

निषिद्ध लिखा है । आपने पढ़ा है ? "पढ़ा तो है", पण्डित जी बोले । तो आप कैसे तैयार हो गए खाने के लिए ? और वह भी मेरा बनाया हुआ, और मेरे ही हाथ से । कारण क्या है ? आपको पता नहीं लगा, यह जो लोभ है न, यही पाप का बाप है । होश नहीं रहता । गीता जी ने (२/४४) में दो आसक्ति बताई—"भोगैश्वर्य-प्रसक्तानाम्' सुख, भोग और सम्पत्ति । इनमें एक एक से आदमी अन्धा हो जाता है । अगर दोनों हो जाय तो फिर उसमें कहना ही क्या है । पूछा गया कि मनुष्य ऐसा क्यों करता है ? तो वह लोभ में आकर करता है । सुख आराम मिले और धन मिल जाय, ऐसी चाहना होने पर फिर चाहे जो पाप करवा लो । दवाई के नाम से चाहे जो चीज खिला दो और व्यापार के नाम से चाहे जो काम करवा लो । सनातनी आदमियों ने माँस सप्लाई तक किया मिलट्री के लिये । व्यापार है, राम-राम-राम । भीतर में लोभ है न लोभ कि रुपया आ जाय । क्या क्या अनर्थ करते हैं लोग ! रोंगटे खड़े हो जायं अगर विचार करके देखें तो । ऐसे अन्याय करते हैं । और है क्या ? यह धन कितने दिन ठहरेगा ? आप कितने दिन जीवेंगे ? परन्तु पाप की गठरी तो बांध ही लेता है । सन्त लोग कहते हैं कि तू थोड़ा सा डर तो सही ।

'पाप कर्म से डर रे मेरा मनवा रे ।"

मन तू पाप कर्म से डर । तू व्यर्थ में अनर्थ करता है, लोगों का माल मारता है और भोग भोगता है । निषिद्ध रीति से सुख भोगता है । थोड़ा सा विचार कर, मनुष्य शरीर मिला है तेरे को । अच्छी अच्छी बातें सुनने, कहने का मौका मिलता है, फिर भी तू ऐसा करता है । भाइयों, सज्जनों !

दुनिया का उद्धार हो जाय, परन्तु ऐसे आदमी का उद्धार नहीं होगा। महान् अपराध करता है। फिर पूछते हैं कि वैराग्य क्यों नहीं ठहरता ? वैराग्य कैसे ठहरे ? जब राग ऊपर चढ़ा हुआ है, भोग-इच्छा भीतर में पड़ी हुई है। वैराग्य कैसे टिके ? वहां वैराग्य नहीं टिकेगा । विरुद्ध बात है। विरुद्ध अवस्था है यह । राग के वशीभूत होकर निषिद्ध आचरण से भी बचता नहीं । उसको दीखता है वैराग्य। वैराग्य–२ कुछ नहीं। भाई, अगर आप दुर्गति से बचना चाहते हैं, नरकों से बचना चाहते हैं, चौरासी लाख योनियों से बचना चाहते हैं, महान्-महान् कष्टों से बचना चाहते हैं, तो आज से अभी से विचार कर लें कि दूसरों का हक नहीं लेंगे। किसी रीति से ही लिया हो, वह ब्याज सहित उसको पूरा का पूरा देना होगा। हक मारने का भाव ही भीतर से सदा के लिए उठा दो। जीवन निर्मल बना लो सज्जनों ! तो यह पारमार्थिक बातें समझ में आने लग जायेगी। आचरण में आने लग जायेंगी। परन्तु जब तक नीयत खराब होगी, तब तक ये बातें समझ में नहीं आ सकती। याद कर लो, दूसरों को सुना दो, परन्तु जब तक पाप विराजमान है भीतर, तब तक कुछ नहीं होगा। इस वास्ते कम से कम, कम-से-कम सबसे पहले यह निश्चय करलो कि अन्याय पूर्वक भोग नहीं भोगेंगे और अन्याय पूर्वक संग्रह नहीं करेंगे। अन्याय की तो बात ही क्या कहो। निषिद्ध कर्मों का त्याग भी त्याग में पहला त्याग है।

"त्याग से भगवत् प्राप्ति" जो ग्रन्थ है उसमें सबसे पहला त्याग निषिद्ध कर्मों का त्याग है—झूठ, कपट, जालसाजी, बेईमानी, अभक्ष्य भक्षण आदि–२। ये सात निषिद्ध आचरण हैं शरीर से, मन से कभी नहीं करना चाहिए। यह पारमार्थिक

मार्ग में कलंक है। तो क्या पहले कलंक का भी त्याग नहीं कर सकते ? हृदय से त्याग कर दो। भीतर से त्याग का भाव मुख्य है इतना होने पर भी किसी कारण से कोई पाप या दोष हो जाय तो जलन पैदा हो जायेगी यह इसकी पहिचान है। अशान्ति हो जायेगी। उस जलन में यह ताकत है कि अगाड़ी पाप नहीं होगा। पक्का विचार कर लें कि अब नहीं करेंगे। हे नाथ! ऐसा बल दो, ऐसी शक्ति दो कि आपकी आज्ञा के विरुद्ध कोई काम न करें। तो भगवान् मदद करते हैं, धर्म मदद करता है, शास्त्र मदद करते हैं, सन्त महात्मा मदद करते हैं। सच्चे हृदय से परमात्मा की तरफ चलने वाले के लिये दुनिया मात्र कृपा करती है और मदद करती है। दूसरे पाप आचरण वाले पुरुष भी मदद करते हैं, उसकी सहायता करते हैं।

एक सन्त मिले थे, अन्धे थे। उन्होंने कहा कि मुझे वैराग्य हुआ और मैं बाहर जंगल में रहता था। ठंडक आ गई तो एक भगत ने बढ़िया कम्बल दे दी। वह कम्बल ही मेरे पास वढ़िया थी और कोई चीज वढ़िया थी नहीं। रात्रि में एकान्त था तो कुछ आदमी पास में आये, शब्द सुनाई दिया, उनकी वाणी सुनी। मन में विचार किया कि न जाने डाकू हैं कि चोर हैं, न जाने कौन हैं। मेरे पास यह कम्बल है तो देखकर ये लें जायेंगे तो पहले अपने ही बात कर लो। तो उनसे वोले कि भई बोलो कौन हो, क्या बात है ? उन्होंने आकर देखा कि ये तो बाबाजी, साधु हैं। ऐसा देखकर बोले महाराज! आप सन्त हैं, इस वास्ते हम आपसे सच्ची बात कह देते हैं कि हम चोरी करने को जा रहे हैं हमारा पेशा

चोरी करने का नहीं है, हम तो गृहस्थ हैं। अपना कमा कर

खाने वाले हैं परन्तु राज्य का लगान बहुत बढ़ गया है, वह दे नहीं सकते, इस वास्ते चोरी करके लाकर देना पड़ेगा। इस वास्ते हम चोरी करने को जा रहे हैं। सन्त ने कहा कि भैया चोरी करना अच्छा नहीं है। उन्होंने कहा कि हम भी अच्छा नहीं समझते। परन्तु करें क्या? इतना लगान कहाँ से दें? हमारे पास है नहीं। इतनी बात करी। पर मेरी कम्बल नहीं ली। तो आदमी लोभ में ऐसा करता है, लोभ में भी आफत आ जाती है तब और बिना आफत के लोभ में चोरी करे, दूसरों को दुःख दे, धन मार ले, कितनी पाप की बात है, कितनी अन्याय की बात है। ये एक विलक्षण बात है कि निर्धन होने पर भी पाप न करे। दुःख पा ले पर पाप न करे, अन्याय न करे

सिबि दधीच हरिचन्द नरेसा।
सहे धरम हित कोटि कलेसा॥ (मानस २/९४/२)

धर्म के लिये करोड़ों कष्ट सह लिये। पर अपने धर्म से विचलित नहीं हुए।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपद काल परखिअहिं चारी॥ (मानस ३/४/४)

इनकी परीक्षा आपत्ति के समय होती है। तो मनुष्य के लिये बहुत ही आवश्यक है कि धैर्य खोवे नहीं। जोर–२ से हवा आती है कभी-कभी, तो बड़े बड़े वृक्ष टूट जाते हैं। पर उस हवा में भी ठीक रह जायें तो फिर मौज से रहें, कोई खतरा नहीं। इसी तरह काम, क्रोध, लोभ आदि की हवा का झौंका मिट जाता है, तो फिर ठीक हो जाता है। थोड़ा सा धैर्य रखें। कैसी भी आफत आ जाय, पाप नहीं करेंगे, अन्याय नहीं करेंगे, शास्त्र निषिद्ध आचरण नहीं करेंगे, भूखे मरेंगे तो

मर जायेंगे और क्या होगा, बताओ ? पास में कुछ नहीं है तो भूखे मर जायेंगे, इसके सिवा दण्ड होगा नहीं। पाप करोगे तो नरकों में जाना पड़ेगा और चौरासी लाख योनियों में; तो दण्ड होगा और नरक से बढ़कर कोई दण्ड नहीं। यह स्वीकार कर ले तो उससे कोई शक्ति कभी पाप करवा नहीं सकेगी।

शास्त्रों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों के अस्त्रों का वर्णन आता है। ब्रह्मास्त्र होता है ब्रह्मा जी का, भगवान् विष्णु का नारायण आस्त्र है और शिवजी का है पाशुपतास्त्र। ये मन्त्रों के प्रयोग से चलते हैं तो ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया जाता है तो कितनी ही सेना को खत्म करदे यह। ब्रह्मास्त्र का उपाय है उसका उपसंहार करना, मन्त्रों से पीछे उसको खेंचे। ब्रह्मास्त्र का उपसंहार आता है कि उसको उल्टा लेने से वह आगे दखल नहीं देता। ऐसे नारायण अस्त्र छूट जाता है तो वह भी खातमा ही कर देता है। उसका उपाय है कि शरण हो जाय, लम्बे पड़ जाय, शरण ले ले। इससे वह नारायण अस्त्र नहीं मारेगा। तो बच जायेंगे। परन्तु पाशुपतास्त्र तो छोड़ने पर चाहे कुछ भी करो, खतम करेगा ही। भले ही शरण हो जाओ, भले ही कुछ भी करो। वह तो संहार करेगा ही। पाशुपतास्त्र बहुत कम आदमियों के पास है। महाभारत का युद्ध हुआ, उसमें अर्जुन के पास था, भगवान् शंकर का दिया हुआ और भगवान् शंकर ने कह दिया कि तुम्हें चलाना नहीं पड़ेगा। यह तुम्हारे पास पड़ा-पड़ा विजय कर देगा, चलाने की जरूरत नहीं, चला दोगे तो प्रलय हो जायेगी ससार में। इस वास्ते चलाना नहीं। तो पड़ा-पड़ा विजय कर देगा। ऐसे सज्जनों ! आपको पाप से बचने के लिये पाशुपतास्त्र बताता हूँ, आप कृपा करके सुनें और उसे धारण कर लें, बड़ी

भारी कृपा मानूंगा। आपने बड़ी भारी कृपा की। वह क्या ? कि मर जायेंगे पर पाप नहीं करेंगे, अन्याय नहीं करेंगे, नहीं करेंगे, नहीं करेंगे। ऐसा केवल आपका विचार। ऐसा रखने से आप मर जावोगे बिना अन्न के यह बात होगी नहीं। अन्न के बिना मरना पड़े, यह है अस्त्र का चलाना। यह चलाना नहीं पड़ेगा। पक्का विचार पड़ा-पड़ा आपकी विजय कर देगा। हमें मौत स्वीकार है, आफत स्वीकार है, पर पाप स्वीकार नहीं है, ऐसा पक्का विचार होने पर आपसे कोई पाप करवा नहीं सकता, अन्याय करवा नहीं सकता। किसी की ताकत नहीं कि अन्याय करवा ले। साथ में रखिये भगवान् का भरोसा। याद करते रहो हे नाथ! यह बात तो मेरी है पर बल आपका है। इस बात के निभाने में बल आपका होगा, तब होगा काम। अर्जुन को कहा —

निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्। (११/३३)

निमित्त मात्र तो मैं बन जाता हूं परन्तु यह काम कर लेना ठीक तरह से यह मेरी ताकत के बाहर की बात है। हे नाथ! आप निभाओ। तो "उस सेवक की लाज, प्रतिज्ञा राखे साईं"। "आछी करे सौ रामजी" रामजी जो करते हैं अच्छी करते हैं, भगवान् के द्वारा अपना अच्छा ही अच्छा होता है, रक्षा होती है, सहायता होती है, फायदा होता है, नुकसान होता ही नहीं।

"भूंडी बनै सौ आपकी"—भूंडी (बुरी) तो आपकी है, खुद की है, खराब खुद करता है अगर खुद तैयार नहीं होता तो कोई नहीं करवा सकता। वहम होता है कि अमुक ने करवा दिया ऐसा। कानून ने ऐसा कर दिया, लोगों ने ऐसा कर दिया, कुसंग ने ऐसा कर दिया, वायु-मण्डल ऐसा ही आ गया, हमारा भाग्य ऐसा ही था, संग अच्छा नहीं मिला, गुरु नहीं

मिले आदि आदि बातें सब बहानेबाजी है और कुछ नहीं। कोई भी किंचिन्मात्र भी आपका बिगाड़ कर नहीं सकता, जब तक आप बिगाड़ के लिए तैयार न हो जायें और उसमें भी अपना विचार पक्का रखें और सहारा भगवान् का हो। भीतर से पुकारता रहे प्रभु को कि हे नाथ! बिना आपकी कृपा के हमारे से नहीं होगा यह। ऐसे कृपा का भरोसा। तो उसका पतन कभी हो नहीं सकता।

भगवान् के चरणों की शरण लेने से भगवान् कहते हैं–

"अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः"।

(गीता १८/६६)

सब पापों से मैं मुक्त कर दूंगा। तू चिन्ता मत कर। पर—

"मामेकं शरणं व्रज"

शर्त यह है। शरण यदि धन की रखेगा; झूठ, कपट, बेईमानी का आश्रय रखेगा, तो भाई मेरे हाथ की बात नहीं। **"मामेकं शरणं व्रज"**—एक मेरी शरण हो जा। मनुष्य क्या करता है? झूठ, कपट, बेईमानी का सहारा लेता है। आज कहा जाय कि पाप मत करो। तो लोग कहते हैं कि महाराज आजकल के जमाने में यह नहीं चल सकता। यह आपकी बात पुराने ढंग की है, पुराने जमाने की। इस जमाने में ऐसा नहीं चल सकता। ऐसा करें, तो भूखों मर जायेंगे। जी नहीं सकते। आज सच्चाई के साथ कैसा करें? लाख रुपया कमाते हैं तो लगभग आधा टैक्स का देना पड़ता है। हमारे एक भाई ने कहा है। अब बताओ क्या कमावें, क्या खावें? इस वास्ते, इस जमाने में मनुष्य इस चीज को नहीं कर सकता। हम कहते हैं लाख रुपया कमाओ तब तो सरकार कृपा कर रही है कि लोभ के वशीभूत होकर ज्यादा संग्रह मत करो।

क्रियात्मक उपदेश दे रही है। साधारण खर्चा करो और साधारण कमाओ और खाओ। उससे पाप कोई नहीं करवा सकता। कुछ रुपये कमाने तक छूट है न टैक्स की ? उतने के भीतर भीतर कमाओ। कहते हैं खर्चा कहां से लावें, छोरी का ब्याह कैसे करें ? मुश्किल हो जाती है, सभ्यता है। सभ्यता को तिलांजलि दे दो, पानी दे दो, पानी में खड़े होकर। हमें वह सभ्यता नहीं रखनी। हमारी बेइज्जती ही सही। पाप तो करेंगे नहीं। अन्याय करेंगे नहीं। बेइज्जती हो जाय, उससे डरेंगे नहीं। पुण्य करते हुए, शुभ काम करते हुए, धर्म के ऊपर चलते हुए, अगर निन्दा करें, तो करो।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मन: (गीता १६/२१)

अपना पतन करने वाले काम, क्रोध और लोभ ये तीन प्रकार के नरकों के दरवाजे हैं। इनमें प्रविष्ट हो गया, तो नरकों में तो गया ही। यदि भगवान् को याद करे कि अगाड़ी ऐसा नहीं करेंगे तो नहीं जायेगा। जब कभी सुधर जाय उमर भर में, जब कभी चेत हो जाय और विचार पक्का हो जाय कि पाप कभी नहीं करूंगा, तो पूरा प्रायश्चित हो जायेगा। भगवान् की कृपा से उसको बल भी मिल जायेगा, धर्म मिल जायेगा और वह सन्त बन जायेगा। ऊपर से दीखने पर वह भाई हो चाहे बहिन हो, गृहस्थ हो कुछ भी हो, भगवान् तो भीतर का भाव देखते हैं "भावग्राही जनार्दन:" वे भाव भोक्ता है। भाव जिसका निर्मल हो गया, वह तो निर्मल हो ही गया। बाहर से निर्मल होने में, अच्छा बनने में देरी लगती है, पर भाव कि हम पाप नहीं करेंगे, इतने में बहुत जल्दी शुद्ध हो जाता है।

"व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह:" निश्चय कर लिया कि पारमार्थिक मार्ग में ही चलना है, कुछ भी हो जाय। "अपि चेत्सुदुराचारों:"—पापी से पापी हो तो उसे भी "साधुरेव स मन्तव्य:"—साधु ही मानना चाहिए, क्योंकि "सम्यग् व्यवसितो हि स:"—पक्का निश्चय कर लिया, पक्का। उस भाव के अनुसार वह पवित्र हो जाता है।

रहति न प्रभु चित चूक किए की।
करत सुरति सय बार हिए की।। (मानस १/२८/३)

पहले दोष बन गए, उन बातों को भगवान् याद नहीं करते। जिसका भाव अच्छा है और इधर चलना चाहता है, उसको भूल न जाऊं, भगवान् उसे सौ बार याद करते हैं। ऐसे प्रभु के रहते हुए सज्जनो! भय किस बात का ? सच्चे हृदय से पाप का त्याग कर दो। अभी तो लोभ में आकर पाप कर बैठते हो; परन्तु अगाड़ी दशा क्या होगी ? इसका कुछ विचार है ? धन यहीं रहेगा, सम्पत्ति यहीं रहेगी, मर जावोगे, उम्र भर में खर्च कर सकोगे नहीं। पाप से कमाया हुआ धन खर्च नहीं किया जायेगा, बाकी बचेगा और पाप किया हुआ कर्म पीछे नहीं रहेगा, साथ चलेगा। और महान् दण्ड भोगना पड़ेगा। तो समझकर आदमी को तो जल्दी चेत कर लेना चाहिए, तत्काल। केवल विचार हो जाय कि अब पाप नहीं करेंगे अन्याय नहीं करेंगे।

दूसरों का बुरा करोगे तो तुम्हारा बुरा होगा। दूसरों का भला करोगे तो तुम्हारा भी भला होगा, क्योंकि दूसरों का भला करने से अपना भला अपने आप होने लगता है।

श्री हरि :

संसार में रहने की विद्या

वास्तव में अभिमान और ममता का त्याग कठिन है। परन्तु एक बात आपको बताई जावे, भाई-बहिन अपने-अपने घरों में अनुष्ठान करें, उसके अनुसार जीवन बनावें, तो बहुत सुगमता से अभिमान और ममता का त्याग हो सकता है। घरों में प्राय: करके दो बातों को लेकर लड़ाई होती है। काम-धन्धा तो तुम करो और चीज वस्तु मैं ले लूं। आराम, आदर, सत्कार सब कुछ मेरे को लेना है। काम-धन्धा और खर्च भी तुम करो। इन बातों को लेकर खटपट चलती है। अगर इनको उलट दिया जाय, काम-धन्धा मैं करूं, आराम आप करो। आदर-सत्कार, मान-प्रशंसा ये लेने की नहीं देने की हैं तो, दूसरों का आदर करें, मान दें, आराम दें, सत्कार करें, उनकी आज्ञा पालन करें, उनको सुख पहुँचावें, ऐसे आपस में किया जावे तो प्रेम बढ़ता है।

मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपने मन की बात पूरी करना चाहता है, और अपने मन की होने से राजी होता है। धन की, मान की, बड़ाई की, जीने की कामना होती है। परन्तु इन कामनाओं में मूल कामना यह है कि मेरे मन की बात हो जाय। यह बात बढ़िया नहीं है। तो, अपने मन की बात न करके औरों के मन की बात करता चला जाय तो

निहाल हो जाय । इसमें केवल दो बातों का खयाल करना है कि उसकी बात न्याय युक्त हो, और अपनी सामर्थ्य में हो । इसका एक सरल उपाय है । यह निश्चय करलें कि हमें संसार से लेना नहीं है—संसार की सेवा करनी है । क्यों करनी है ? क्योंकि लिया है इस वास्ते देना है । तो, संसार को देना है, लेना नहीं है ।

एक मार्मिक बात बतायें आप को । ध्यान दे कर सुनें । मानव शरीर परमात्मा की प्राप्ति के लिये मिला है । संसार में रहने की एक रीति है । उस रीति को हम धारण करें, तो परमात्मा की प्राप्ति बहुत सुगमता से हो जाय । हरेक काम करने की एक विद्या होती है, यदि उसके अनुसार काम करते हैं तो वह काम पूरा हो जाता है । संसार में रहने की भी एक विद्या है तो उस विद्या को भी जानना चाहिये । विद्या का पालन करें तो बड़ी सुगमता से संसार में रहेंगे और संसार को पार कर जायेंगे । वह विद्या क्या है ? जिसने जिसके साथ जो सम्बन्ध मान रखा है, उसके अनुसार अपने कर्तव्य का पालन करे, बडी तत्परता से, और उससे अपनी कोई भी इच्छा न रखे, कामना न रखे, वासना न रखे । अपने लेना नहीं है, देना है । यह शरीर है, संसार का सुख लेने के लिये नहीं मिला है । "एहि तन कर फल विषय न भाई" । शरीर का फल तो सेवा करना है । माता के लिये पुत्र बनो तो सपूत बन जाओ । मां की सेवा करो । माता के पास रुपये हैं, गहने-कपड़े हैं, तो कहो मां, जो तुम्हारे पास है उसे हमारी बहिन को दे दो । छोटे भाई या बड़े भाई को दे दो । मेरे ऊपर तो एक ही कृपा करो कि सेवा मेरे से ले लो । माँ-बाप की सेवा से आदमी उऋण नहीं हो सकता । उनका जितना भी ऋण

हमारे ऊपर हैं, उसे हम चुका नहीं सकते । ऋण को अदा नहीं कर सकते । कोई उपाय नहीं है । तो क्या है ? सेवा करके उनकी प्रसन्नता ले लो । प्रसन्नता लेने से वह ऋण माफ हो जाता है । मां ने जितना कष्ट सहा है, बालक उतनी मां की सेवा नहीं कर सकता । सब कुछ मां ने दिया । कोई कहे कि मैं मेरे चमड़े की जूती बना कर मां को पहना दूं । कोई उनसे पूछे । यह चमड़ा भी बाजार से लाये हो क्या ? यह तो मां का ही है । इस पर तू अधिकार क्या करता है ? मां से मिला है । आज हम बड़ी बड़ी बातें बनाते हैं । लोगों में विद्वान्, सज्जन कहलाते हैं, यह शरीर मिला किससे है ? मां से मिला है । मां से पालन हुआ है ।

आप कितने भी विद्वान् हो जायं । बचपन में बैठना नहीं आता था, मां ने बैठना सिखाया । चलना सिखाया, उंगली पकड़ कर । भोजन करना नहीं आता था, मां ने बिठा करके मुख में ग्रास दिया । भोजन करना सिखाया । बहिनें बैठी हैं—यह दशा थी बहिनों की, और भाइयों की भी । उस अवस्था में मां ने पालन किया और बड़े-बड़े कष्ट सहे । खेल में इधर-उधर जाते तोड़-फोड़ करते, वृक्षों में उलझते, बिच्छू को भी पकड़ने को दौड़ते, आग में हाथ डालना चाहते । मां ने रक्षा की । टट्टी-पेशाब करते उसमें ही लकीरें खींचने लगते । अब जह्न कर, मन खराब होता है । होश नहीं था कुछ भी, यह सब मां ने ज्ञान कराया । बड़ी विलक्षणता से पालन किया ।

कभी-कभी भाई लोग अभिमान में आकर कह देते हैं कि क्या बड़ी बात है ! उनसे मैं कहता हूं कि बच्चे को दो दिन गोद में रख कर देखो । मां में मातृत्व-शक्ति है । तब

हमारा पालन हुआ । । तो जितनी अपनी सामर्थ्य हो मां-बाप की सेवा करो । जो नहीं जानते, कृपा करके उन्हें समझाओ कि बड़ों का आदर करो । जो मां-बाप का आदर नहीं करते, उनका भगवान् भी आदर नहीं करते । कोई उनका विश्वास नहीं करते क्योंकि जो मां-बाप का नहीं है, वह किसका होगा ? मां-बाप की सेवा करने से भगवान् राजी होते हैं । आज्ञा पालन करने से सिद्धि को प्राप्त होता है । अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति होती है । इस कारण भाई-बहिनों को आज्ञा पालन करना चाहिये । आज्ञा पालन से क्या होगा ? परिश्रम होगा, सेवा होगी । निरहंकार हो जायेंगे । **"निर्ममो निरहंकार......."** चीज-वस्तुओं से उनकी सेवा करने से निर्मम हो जायेंगे । जितनी-जितनी चीजों को सेवा में लगा देंगे, उतनी ही उनसे ममता दूर हो जायेगी और जितना परिश्रम करोगे—उतना अपना अहंकार-अभिमान नष्ट हो जायेगा । आराम बुद्धि, और अपने में बड़प्पन का अहंकार पतन करने वाले हैं । संसार की सेवा करते करते अभिमान को सुगमता से दूर कर सकते हो । ऐसे ही समान उम्र वालों की सेवा करो । छोटी अवस्था वाले हैं, उनकी भी सेवा करो । छोटों का पालन-पोषण करना भी सेवा है । सदाचार की शिक्षा देना भी सेवा है । उम्र भर सुख पायेंगे— इस वास्ते बालकों को अच्छी शिक्षा दो । बेटा-बेटी को अच्छी शिक्षा दो, जिनसे वे अच्छे बन जायं ।

ये मातायें चाहें तो संसार का कल्याण कर सकती हैं, क्योंकि हम जितने भाई-बहिन बैठे हैं, ये सबसे पहले मां की गोद में खाते हैं । मां की गोद में खेलते हैं । मां का दूध पीते

हैं । मां के स्वभाव का असर पड़ता है । महिलायें जैसी प्रकृति

(स्वभाव) की होंगी वैसे ही बालक-बालिकायें होंगे। जैसे बच्चे होंगे, वैसा ही वह देश बनेगा। वैसे ही नागरिक बनेंगे बड़े होकर। मां छोटी अवस्था में जो शिक्षा देती हैं, वह बड़ी काम करती है; क्योंकि बचपन में पड़े हुए संस्कार बहुत काम करते हैं। अतः मातायें चाहें तो देश का बड़ा सुधार कर सकती हैं। माताओं में मातृत्व-शक्ति होती है, मातृ-शक्ति। ये उसका उपयोग करें। भगवान् ने इन्हें शक्ति दी है। ये छोटी-छोटी बालिकायें हैं, ये भी अपने भाई-बहिन का इतना पालन करती हैं कि बड़े लड़के अपने भाई-बहिन का ऐसा पालन नहीं करते। आप परीक्षा ले कर देख लो। छोटे भाई-बहिन को बड़े भाई की गोद में रख कर देख लो, और बहिनें भी रखती हैं, बहिनें बड़े प्यार से पालन करती हैं। बहिनें अपनी चीजें भी छोटे भाई-बहिनों को खिला देंगी। भाई अपने आप खा जायेगा। उनकी भी खा जायेगा। बालिकाओं के हृदय में यह भाव नहीं आता कि यह चीज तो मेरी है। मैं क्यों दूं? यह भाव आता क्यों नहीं? यह पालन-पोषण करने की शक्ति भगवान् ने दी है, यही शक्ति तो मां बनने के लिये दी है। यह जो शक्ति इन्हें दी है, यदि वे इस शक्ति का उपयोग करें तो बहुत सुगमता से निर्मम हो सकती हैं।

इसका कारण यह है कि सबका पालन-पोषण करना, सबकी रक्षा करना और सबको देना इनसे ममता दूर होती है। सेवा करने से अभिमान दूर होता है। यह बड़े ऊँचे दर्जे की बात कही गई है। अगर यह व्यवहार में आ जाय तो काम बन जाय। हमारे भाई, ऐसे ही करें। काम-धन्धा ठीक करें। चीजों को उदारता से बरतें। औरों को देवें। दो का आदर विशेषता से होता है। एक तो जो उपकार करते हैं

और दूसरे बड़े-बूढ़े जो पूजनीय होते हैं। बड़े-बूढ़े हैं, उनका आदर करें, आज्ञा मानें। जो दीन हैं, रोगी हैं, अभावग्रस्त हैं, उनकी सेवा करें। दीन-दुखियों में भगवान् रहते हैं। इस वास्ते यदि वहां सेवा करी जावे तो आपकी सेवा स्वीकार करने के लिये भगवान् तैयार हैं। इस वास्ते दीन-दुखियों से घृणा मत करो। द्वेष मत करो। ईर्ष्या मत करो। अपने में अभिमान मत लाओ कि हम बड़े हैं। वास्तव में आप में जो बड़प्पन है, यह बड़प्पन उन छोटे आदमियों का दिया हुआ है। ख्याल करो। धनी आदमी जो गरीबों को देता है तो उसके धन का सदुपयोग होता है। धन होते हुए भी धनवानपन गरीब आदमियों ने दिया। तो इस सुख को देने वाले गरीब हैं। जिनके दर्शन मात्र से आपको प्रसन्नता होती है, उनकी सेवा करना आपका कर्त्तव्य है। बड़े-बूढ़ों ने आपका पालन किया है। रक्षा की है। विद्या दी है, बुद्धि दी है, सम्पत्ति दी है। उनकी सेवा करना भी आपका कर्त्तव्य है। इस वास्ते उनकी सेवा करो। उन्हें सुख पहुंचाओ, इससे हमारे पर जो पुराना ऋण है, वह तो नहीं उतरेगा परन्तु माफ हो जायेगा। आगे अभिमान नहीं होगा और संसार में रहने की विद्या आ जायेगी। ऐसे प्रेम और सेवा होगी तो संसार के लोग चाहेंगे। जो सेवा करने वाले हैं उनको सब लोग चाहते हैं।

मनुष्य को चाहिये जहां कहीं रहे अपनी आवश्यकता पैदा कर दे। भाई हो या बहिन हो, साधू हो या गृहस्थ हो, कोई क्यों न हो। अपनी आवश्यकता को जरूर पैदा करदे, तो वह संसार में बड़े सुख से रहेगा। आवश्यकता कैसे पैदा

कर दें ? एक तो हर समय अच्छे से अच्छे काम में लगे रहो। यह समय बड़ा कीमती है। इस समय के समान कोई चीज कीमती नहीं है। आप समय देकर विद्वान् बन सकते हैं। समय देकर धनी बन सकते हैं। समय दे कर बड़े कीर्ति वाले हो सकते हैं, परिवार वाले हो सकते हैं। तो समय पाकर सब चीजें मिलती हैं। ध्यान दें, परन्तु सब चीजें देने पर भी समय नहीं मिलता। कहते हैं उम्र भर में जो भी प्राप्त किया एक मिनट के बदले में वह सब कुछ देता हूं परन्तु उसके बदले में एक मिनट का समय भी नहीं मिलता। समय देने से सब मिलता है; परन्तु सब देने से समय नहीं मिलता है। समय को कितना कीमती कहें ? भागवत में आया है—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः।।
(१/१८/१३)

भगवान् के प्रेमी पुरुषों का लव मात्र का संग अच्छा है। उससे न तो मुक्ति की तुलना कर सकते और न हीं स्वर्ग की, केवल लव-मात्र के संग से।

गोस्वामी जी ने भी कहा है—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।।
(मानस ५/४)

तो संत के लव-मात्र से संग होने के समान स्वर्ग और मुक्ति की भी तुलना नहीं हो सकती। समय इतना कीमती है। समय मिले तो इसे बेकार मत जाने दो। उत्तम से उत्तम, ऊंचे से ऊंचे काम में लगा दो इस समय को। बन को

लोग ख़र्च कर सकते हैं। बड़े आदर के साथ उसकी रक्षा करते हैं तिजोरी में बन्द कर देते हैं। धन तो तिजोरी में बन्द हो सकता है परन्तु समय तिजोरी में बन्द नहीं हो सकता। समय देने से धन मिलता है। धन देने से समय नहीं मिलता। समय तो हरदम सावधान होने से ही सार्थक होगा। नहीं तो बीत जायेगा, निरर्थक। जिन लोगों ने समय का आदर किया है, वे बड़े श्रेष्ठ पुरुष बन गये। वे अच्छे महात्मा बन गये, उन लोगों ने क्या किया है? जीवन का समय भगवत् चरणों में लगाया है। संसार के भोगों से विमुख होकर, परमात्म-तत्त्व जानने के लिये समय लगाया है। वे संत और महात्मा बन गये। समय के बराबर कोई कीमती चीज नहीं है संसार में। लव-मात्र का सत्संग हो जाय। साधु-महात्मा का संग हो जाय। भगवान् का संग हो हो जाय, प्रेम हो जाय। भवगान् का आकर्षण हो जाय। वह समय सबसे ऊंचा है। अतः इस समय को उत्तम से उत्तम काम में खर्च करो। स्वाध्याय करो, जप करो, कीर्तन करो, सेवा करो। अच्छी पुस्तकों का पठन-पाठन करो। विषय भोगों में, ताश, हंसी-दिल्लगी, नाच-तमाशा-सिनेमा, बीड़ी-सिगरेट आदि में समय बरबाद मत करो। बीड़ी-सिगरेट पीते हैं। चिलम पीते हैं। आप विचार करो, आपके पास समय है, उसमें भी आग लगाते हो, धुंआ करते हो। धुआं हो गया, धुआं। आपका समय है उसमें भी आग लगती है। ५-७ मिनट आपने बीड़ी सिगरेट पीयी तो उस समय में भी धुआं लग गया। पैसे गये, समय गया, स्वतन्त्रता गई—राम-राम-राम-राम अरे! फायदा क्या? किसी तरह का फायदा नहीं। जो नहीं पीते हैं, उन्हें आपने गन्दगी दे दी। उनकी नाक में धुंआ चढ़ गया।

एक संत से पूछा—महाराज ! आप बीड़ी पीते हो ? पीते तो नहीं, लोग पिला देते हैं। कहते हैं—गाड़ी में बैठते हैं, लोग फूंक मारते हैं तो क्या करें ? तो, जो नहीं पीना चाहे, उन्हें लोग पिला देते हैं। बताओ उन्हें तंग किया, दुख दिया। कहा है—**"पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई"**। दूसरों को पीड़ा दी। तो, आपको क्या मिला ? तो दूसरों की स्वतन्त्रता में भी बाधा डाल दी। राम-राम-राम-राम। और सदा के लिये परतन्त्र हो गये। और वह भी धुएं में। ऐसे निकम्मे काम में समय लगाया। राम-राम-राम-राम। यह समय भगवान् के लिये लगाओ तो भगवान् मिल जावें। भक्त बन जाओ। जिनके लिये भगवान् कहते हैं—**"मैं हूँ संतन का दास हूँ। भक्त मेरे मुकुट मणि"**॥ मुकुटमणि बन जाते हैं। कौन ? जो भगवान् के चरणों में समय लगाते हैं। भगवान् भी आदर करते हैं। क्या किया कि समय को भगवान् के चरणों में लगाया। ऐसा समय ऐसे नष्ट करने के लिये है ? यह ताश खेलने में, पत्ते पीटने में समय लगा दिया। राम-राम-राम-राम। विद्या अध्ययन करते, सेवा करते, दूसरों का उपकार करते, तो समय का उपयोग होता। कितना बढ़िया काम होता है। वह समय ऐसे बरबाद कर दिया। यह समय ऐसे नष्ट करने के लिये नहीं मिला है।

हमारी बहिनों की दशा क्या हैं ? बात करने में समय लगा देती हैं। राम-राम-राम। घर पर कोई बात करने को नहीं मिला तो पड़ौसी के यहां बात करने चली जाती हैं। समय लगा देती हैं। नाम-जप करो, कीर्तन करो, रामायण का पाठ करो। दिन भर राम-राम करो निहाल हो जाओगी।

मीराबाई की मुक्ति हो गई। इसमें कारण क्या था ? भगवान् का भजन किया। वह भगवान् के भजन में लग गई तो आज मीरा बाई के पद गाये जाते हैं। भगवान् में प्रेम पैदा होता है। कितनी उंची हो गई मीरा बाई। संसार में प्रसिद्ध हो गई। कितना ऊंचा नाम ? परन्तु यदि पूछो कि मीरा की सास का क्या नाम है ? तो उत्तर मिलता है कि पता नहीं। भजन करने से जीव बड़ा होता है। तो अपने समय को सार्थक करो। ऊँचे से ऊँचे, अच्छे से अच्छे, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ काम में लगाओ। समय बरबाद मत करो। यह पहली बात।

दूसरी बात—जो काम करे वह सुचारु रूप से करे। काम करने का तरीका है, जो काम करने की विद्या है उसे बढ़ाते ही चले जाओ। लिखना-पढ़ना, बोलना, रसोई बनाना, कपड़े धोना, सफाई करना, झाड़ू देना, बर्तन आदि साफ करना है। बड़ी सफाई से करो, बड़ी सुन्दर रीति से करो। सुचारू रूप से करो तो काम अच्छा होगा। नौकरी ही करना है, तो नौकरी का काम ऐसे बढ़िया ढंग से करो कि जिससे मालिक राजी हो जाय। मालिक यदि नाराज होकर निकाल भी दे तो निकलना तो पड़ेगा, लेकिन आपने वहां काम-धन्धा करके विद्या तो हासिल कर ली। क्या वह उस विद्या को छीन लेगा ? नीति में आता है कि ब्रह्मा नाराज होकर हंस को निकाल दे, तो क्या वह दूध-पानी को अलग करने की विधि को भूल जायेगा ? इस विद्या को तो ब्रह्मा जी भी वापिस नहीं ले सकते। काम करने की आदत है. आपका स्वभाव है, उसे कोई छीन नहीं सकेगा। वह गुण तो आपके पास रहेगा। वह कितनी बढ़िया बात है। श्रेष्ठ बात है। समय की सार्थकता करना, कार्य-कुशलता को बढ़ाते चले जाना है। बोलना है,

चलना है, सब बातें बढ़िया तरह करना। थोड़े समय में, थोड़े खर्चे में बढ़िया हो जाय, ऐसा बनाओ जो सब लोग खुश हो जायें, प्रसन्न हो जायें गृहस्थों से ऐसी बातें हमने सुनी हैं, जो माताएं-बहिनें चीजें अच्छी बनाती हैं, उनका सब आदर करते हैं, उन्हें बनवाने के लिये बुलाते हैं। परन्तु इस बात का अभिमान नहीं करना है। अभिमान तो पतन करने वाला होता है। "निर्ममो निरहंकार" अहंकार तो छोड़ना है। अरे! काम-धन्धा करके फिर उससे भी अहंकार कर लो। इस वास्ते सुन्दर रीति से काम करो, सुचारू रूप से काम करो। मान-बड़ाई के लिये नहीं, रुपये-पैसों के लिये नहीं। वाह-वाह के लिये नहीं, अपना अन्तःकरण शुद्ध करने के लिये, निर्मल करने के लिये, जिससे भगवान् में प्रेम बढ़े। प्रेम बढ़ाने के लिये काम-धन्धा करो। सेवा करो। काम में चातुर्य बढ़ाने से आपकी माँग हो जायेगी।

तीसरी बात—व्यक्तिगत खर्चा कम करो। दान-पुण्य करो। बड़े-बूढ़ों की रक्षा करो। दीनों की रक्षा करो। अभाव-ग्रस्तों को दो। सेवा करो परन्तु अपने शरीर के निर्वाहार्थ, साधारण वस्त्र, साधारण भोजन, साधारण मकान, उससे अपना निर्वाह करो। यह भाई-बहिन सबके लिये बड़े काम की चीज है। जो खर्चीला जीवन बना लेता है शरीर के लिये, वह पराधीन हो जाता है। खर्चा कम करना तो हाथ की बात है और ज्यादा पैदा करना हाथ की बात नहीं। फिर भी आजकल लोग करते क्या हैं? खर्चा तो करते हैं ज्यादा और पैदा के लिये सहारा लेते हैं झूठ-कपट, बेईमानी-धोखेबाजी, विश्वासघात का। इससे क्या अधिक कमा लेते हैं। अधिक

कमा लें, हाथ की बात नहीं, खर्चा कम करना हाथ की बात

है । जो हाथ की बात हैं उसे करते नहीं और जो हाथ की नहीं, वह होती नहीं । दुख पाते हैं उम्र भर । इस बात को समझ लें कि भाई अपने व्यक्तिगत कम खर्चे से ही काम चला सकते हैं । बढ़िया से बढ़िया माल खालो और चाहे साधारण दाल-रोटी खालो निर्वाह हो जायेगा । यदि शरीर बीमार है तो क्या, दवाई ले लो । निर्वाह की दृष्टि से तो कोई बात नहीं परन्तु जो स्वाद और शौकीनो की दृष्टि हो जाय तो वह ठीक नहीं है । यह गलती करते हैं । बहुत बड़ी गलती करते हैं । इन्द्रियों के आधीन होते हैं वे । इससे बचने के लिये, स्वतन्त्र जीवन बिताने के लिये खर्चा कम करो ।

धन कमाना आजकल होशियारी कहलाती है । लोग कहते हैं कि बड़ा होशियार है, कितना धन कमा लिया इसने । अरे ! धन क्या कमा लिया ! उम्र गंवा दी । आप मर गये तो कौड़ी एक साथ चलेगी नहीं । धन कमाने के कारण जो झूठ-ठगी, बेईमानी, धोखेबाजी, विश्वासघात आदि अपनाना पड़ा, वह जमा हुआ है अन्तःकरण में और धन रह जायेगा बैंकों में, आलमारियों में, बक्सों में । यह साथ जायेगा नहीं । धन संग्रह करने में जो-जो पाप बने वह साथ चलेंगे । तो यह पाप की पोटली सिर पर रहेगी, साथ चलेगी । काले बाजार से धन कमा लिया । आय-कर की चोरी करली । बिक्री-कर की चोरी करली । बड़ी होशियारी की । किया क्या ? महान् नाश कर लिया । महान् पतन कर लिया । साथ चलने वाली पूंजी नष्ट कर दी और यहां पर रहने वाली पूंजी संग्रह कर ली । मरने पर कुछ साथ नहीं चलेगा । सब धन यहीं धरा रह जायेगा । पीछे लोग खायेंगे । और दुख पाओगे आप ।
नरकों में जाना पड़ेगा आपको, यह होशियारी है । यह कोई

समझदारी है। कितनी बड़ी भारी वेसमझी है, मूर्खता है। हाँ कह दो—पता नहीं था अब पता लगा। तो भाई! पाप तो साथ में जायेगा। धन यहीं रहेगा। तो अब क्या करें? अब पाप छोड़ दो। अब बेईमानी, ठगी, झूठ-कपट, विश्वास-घात, धोखेबाजी नहीं करेंगे। परिश्रम करेंगे। जितना मिलेगा उससे काम चलायेंगे। पाप नहीं करेंगे। यह है चौथी बात।

कुछ लोग कहते हैं पहले पाप कर लिया, वह पाप तो हो ही गया। कलंक तो लग ही गया। अब धन क्यों छोड़ें? यह बुद्धिमानी है क्या? मालूम था नहीं, हमें पता था नहीं, शुरू कर दिया। अरे भाई! अब छोड़ दो। कोई भोजन करने लगे। कहे—यह क्या कर रहे हो, इसमें तो जहर मिला है। यह नहीं कहेगा कि आपने पहले नहीं कहा, अब तो खायेंगे। यहां तो हाथ का भोजन तो फेंक दोगे और उल्टी करनी शुरू करोगे। खाया हुआ भी निकल जाय तो बड़ा अच्छा है। और यह पाप करेंगे साहब, धन कमायेंगे। महाराज! आपको पता नहीं। आजकल झूठ-कपट के बिना निर्वाह नहीं हो सकता। कानून ऐसा बन गया, संसार ऐसा ही हो गया। इस वास्ते इसके बिना काम नहीं चलता। अच्छा भाई! काम चलाओ कितने दिन चलाओगे? २० वर्ष, ५० वर्ष १०० वर्ष कितने दिन चलाओगे? इतना तो समय ही नहीं मिलता। अगर नहीं कमायेंगे तो मर जायेंगे। क्या हर्ज है भाई! आज बिना पाप के मर जाओ। बाद में भी मरना तो है ही, साथ में पाप की गठरी बांध कर क्या होगा? अरे भाई! बिना पाप ही मर जाओ क्या हर्ज है? तो पाप करने के लिये मानव शरीर मिला है क्या? पाप नहीं करेंगे, अन्याय नहीं करेंगे, भगवान् की तरफ बढ़ेंगे, इस प्रकार करके लोगों

न् मुक्ति पाई। भगवान् राजी हुए। भाई! समय अच्छे काम में लगाओ, उत्तम काम करो। नीचा काम मत करो। हर भाई-बहिन को चाहिये पाप नहीं करे। अन्तःकरण को मैला न करे। सज्जनो, अन्तःकरण को निर्मल रखो। यह जीवन पवित्र हो जाय। इसीलिये यह मानव शरीर मिला है। अतः उत्तम से उत्तम काम में लगे रहना है। अन्याय पूर्वक काम नहीं करना है। ईमानदारी से अपना जीवन निर्वाह कर लेना है। अन्याय नहीं करना है।

आजकल शादी में लड़कों की नीलामी होती है, नीलामी। लड़की का पिता बेचारा स्वयं तो शर्माता है, दूसरों से कहता है कि आप बात कर लो, उसके लड़का है। हमारा सम्बन्ध कर लेवे तो। पूछते हैं, फलाने की लड़की है आप सम्बन्ध कर लो। जवाब दिया, १५०००) रु० कीमत। राम-राम-राम-राम। आज ऐसी दशा है। कन्याओं का ऐसा तिरस्कार। ऐसे स्त्री जाति का तिरस्कार करना ठीक नहीं। किस बात पर हुआ? पैसों के बदले। अरे! पैसे तो आज हैं, कल नहीं। पैसे तो नष्ट होने वाले हैं। कितनी बड़ी भारी दुख की बात है। पैसों के बदले मनुष्य का तिरस्कार। बड़े पाप की बात है। अन्याय की बात है। भाइयों और बहिनों से कहना है कि लड़का ब्याहना हो तो गरीब घर की लड़की लो। वह काम-धन्धा करेगी, अच्छा करेगी। बड़े घर की लड़की तो मालकिन बन जावेगी। काम-धन्धा करेगी नहीं।

एक लड़की की बात हमने सुनी। उस लड़की की शादी हो गई। लड़की थी गरीब घर की, पैसा माँगा ज्यादा। उसका जी ऊब गया। लड़की की बड़ी अवस्था हो गई थी। उसने कहा, पिताजी! आप कर दीजिये, कोई बात नहीं, समय

ठीक नहीं । फिर मैं ठीक कर लूंगी । परन्तु आप दान मत करना मेरे लिये । उठा कर दे देना । कन्या को उठा के देता हूं, ऐसा देना । दान नहीं । करदी शादी, शादी करने के बाद पैसा दिया तो खूब दिया पैसा । शादी होकर वह गई ससुराल । खाट पर बैठ गई और पति से कहा – लाओ मेरी जूती लाओ । तेरी जूती मैं उठाऊँ । मेरे बाप ने पैसा दिया है । आपको खरीदा है । पता है कि नहीं । कितने रुपये लगे, हजारों रुपये लगे । अब उसने भोजन नहीं किया तो मां ने पूछा क्या बात है ? क्या चाहिये । मां मेरी जो स्त्री आई है, मेरी जूती उठा कर लाओ – यहां तक कहती है । बींदनी ऐसा क्यों कहती है ? हमारे बाप ने इतना खर्चा किया है, कर्जा लेकर खर्च किया है । नौकर है हमारा, उसे लाना पड़ेगा । छोरे ने कहा मैं तो जूती नहीं उठाऊँगा, रोटी नहीं खाऊंगा । ऐसा विचार है, मेरे बाप के नौकर हो मेरे बाप ने रुपये दिये हैं । पता है कि नहीं । ऐसे मुफ्त आये हैं क्या आप । इतना इन्तजाम किया है । १६०००) रु० उधार लिया था । इस प्रकार कहने-सुनने से लड़के वालों ने रुपया वापिस किया और लडकी बहू की तरह रहने लगी । कन्यायें लज्जा की मूर्ति हैं । उनका इस प्रकार तिरस्कार करना, समाज में बड़ा अपमान होता है । बड़े दुख की बात है । खर्चा तो पूरा करते हो फिर काम नही चलता तो बेईमानी करते हो । बड़े अन्याय की बात है । इसका नतीजा खराब होगा । जो अन्याय करते हैं उनकी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी । जो धन दुख देकर लिया जावेगा, वह धन आकर आग लगायेगा । गाय का दूध पीते हैं उसे जानते हैं कि कहीं रूआं (बाल) न आ जाय । दूध तो प्रसन्नता से दिया जाता है, बाकी तो खून होता है खून ।

वाल आ जाये तो क्या हर्ज है ? अरे रूआं एक भी टूटेगा तो गौ माता को दुख होगा । तो दुख से ली हुई चीज बड़ी अनिष्टकारी होती है। इसी प्रकार लड़के वाले कहें—हम धन नहीं लेंगे हम तो केवल कन्या लेंगे । कन्या-दान लेते हैं, क्यों लेते हैं ? कन्या-दान भी तो दान है, बड़ा भारी दान है । हम लेंगे तो भगवान् पुत्री देगा तो हम भी कन्या-दान करेंगे । दहेज की चीजें भी घर में नहीं रखते, उसे कुटुम्ब में परिवार में लगा देते हैं । बेटी को, ब्राह्मणों को सबको देते हैं । घर में कोई चीज न रह जाय ऐसे बांटते हैं । मिठाई बांटते है । अपने पर तो कर्जा नहीं रहा, लोग सब राजी हुए । शादी के बाद बहू के पीहर से कोई चीज आती है तो उसकी निन्दा करते हैं कि क्या चीज भेजी है कैसे भेजी ? बहूरानी सुन रही है, उसको लगे बुरा । भला मां की निन्दा किसको अच्छी लगेगी ? बताओ आप भाई-बहिन बैठे हैं । मां की निन्दा से हृदय में दुख हो जाय । बाद में वह हो जायेगी मालकिन, जो वह चाहेगी फिर तो वही होगा । इस वास्ते उसे प्यार करो, स्नेह करो, राजी करो, जो आया उसमें घर से मिला कर बांटो । कहो ऐसा आया है । तो बहू की मां की हो जायेगी बड़ाई । बहू खुश हो जायेगी । महाराज ! आप कहेंगे कि रुपया लगता है । अरे रुपया लगता है तो क्या २०–५० रु० लगाकर आदमी आपका हो जायेगा । बहू आपकी हो जायेगी । सदा के लिये खरीदी जायेगी । १००–५० रु० में कोई आदमी खरीदा जाय तो कोई महँगा है ? सस्ता ही पड़ेगा । गहरा विचार करो । व्यवहार भी अच्छा रहेगा । प्रेम भी बढ़ेगा । बहू भी राजी होगी कि मेरी सास ने मेरी मां की महिमा करी है । इतना खर्च किया । उस अवसर

पड़ेगा, महाराज ! तो भाई ! थोड़ा-सा त्याग करो । खेती करने वाले, कितना बढ़िया से बढ़िया अनाज होता है, उसे मिट्टी में मिला देते हैं । क्यों ? खेती होती है । इसी तरह आप भी त्याग करो । उसका फल बड़ा अच्छा होगा ।

ऐसे वस्तुएं हैं उनका सदुपयोग किया जाय । लड़का–लड़की का ठीक तरह से पालन किया जावे । अच्छी शिक्षा मिल जावे । अच्छे भाव उनके बनाये जावें । सद्गुणी और सदाचारी बनें । पैसे कमाने में तो आपको समय रहता है, परन्तु बच्चे क्या कर रहें हैं, कैसे पल रहे हैं, क्या शिक्षा पा रहे हैं, इन बातों की तरफ आप ख्याल ही नहीं करते । अरे भाई ! वह सम्पत्ति है असली । यह मनुष्य महान् हो जायेगा । कितनी बढ़िया बात होगी । जितने-जितने महापुरुष हुए हैं, उनकी मातायें बड़ी श्रेष्ठ हुई हैं । ऐसी माताओं के बालक बढ़िया हुए हैं । संत-महात्मा हुए हैं । मां का अंश आता है बालक में, इस कारण माताओं को चाहिये कि बालकों को अच्छी शिक्षा दें । परन्तु शिक्षा देती हैं उल्टी, लड़कियों को कहती हैं कि अपना धन तो रखना अपने पास में । जब अलग होगी तो वह धन तो पास में रह जायेगा । ऐसे सिखा कर भेजती हैं कि काम तू क्यों करे, तेरी जिठानी करे, ननद करे । तू काम मत कर । अब वहाँ कलह होगी, खटपट मचेगी । आपके बहू आयेगी, सीखी हुई आ जावेगी, वह भी ऐसा ही करेगी । काम नही करेगी । कहेंगी हमारी बींदनी काम कोनी करे । आप अच्छा करो तो आपके लिये अच्छा होगा । बुरा करो तो बुरा होगा भाई । कलजुग है–इस हाथ दे, उस हाथ ले । क्या खब, सौदा नकद है । इस वास्ते आप अपने माता–पिता का, सास–ससुर का आदर करो, सेवा करो, सत्कार करो । तो

आपका असर पड़ेगा बालकों पर। बालक सेवा करेंगे। आपकी वृद्धावस्था में भी आपकी सेवा करेंगे। परन्तु आप अगर ऐसा करोगे, अपने माइतों की सेवा नहीं करोगे तो बालक पर भी ऐसा ही असर पड़ेगा। उनका स्वभाव भी ऐसा ही बनेगा। आप सदा ही ऐसे नहीं रहोगे। जीते रहोगे तो बूढ़े भी होओगे। उस समय में सेवा करेंगे नहीं, फिर आप कहेंगे कि ये सेवा करते नहीं, बात मानते नहीं। तो तुमने अपने माइतों (बड़ों) की सेवा कितनी करी। अब तुम क्यों आशा रखो? इस वास्ते अच्छा आचरण बनाओ। भला आचरण बढ़िया है।

आजकल तो मां-बाप बच्चों को व्यसन सिखाते हैं। खेल सिखाते हैं। चाय पिलाते हैं, छोटे-छोटे छोरों को। आजकल के छोरा दूध नहीं पी सकते। मलाई आ गई। राम-राम-राम-राम। बड़े आश्चर्य की बात है। हमें तो बचपन की बात याद है, दूध पीना होता था। कहते कि क्या है, इसमें तारा (घी की बूंद) तो है ही नहीं। अच्छा है यह तो उसमें घी डाला जाता–हां अब ठीक है। आजकल घी तो कौन पी सके हिम्मत ही नहीं है। वह मलाई ही नहीं पी सकते। चाय बना ली जाय। राम-राम-राम-राम। माथा खराब हो जावे, नींद आवे नहीं। स्वास्थ्य बिगड़ जावे। आखें खराब हो जावें। दवाई लगे नहीं और पैसा लगे ज्यादा, मुफ्त में। यह दशा हो रही है। तो भाई! ऐसा मत करो। गायों का पालन करो, उनकी रक्षा करो। आपका तो गांव है, कस्बा है। अकाल पड़ जाय तो गऊओं के लिए आप खर्च करो तो बड़ा अच्छा है। मोटर आप रख लेते हो धुएं के लिये, और गायें नहीं रख सकते। कुत्ता-पालन तो कर लेंगे, गऊ का पालन नहीं करगे। वाह, वाह, वाह रे कलियुग महाराज। आपने लीला अजब दिखाई। यह दशा हो रहा है इस वास्ते आप बाल-बच्चों को व्यसन मत सिखाओ।

कपड़े आदि बढ़िया (फैशन वाले) पहना कर राजी होते हैं कि बच्चे हमारे ठीक हो रहे हैं। उनकी आदत बिगड़ रही है बेचारों की। इस वास्ते सादगी रखो, अपने भी सादगी, बाल बच्चों के भी सादगी। अच्छे ढंग से काम कराओ, उत्साह रखो काम धन्धा ठीक कराओ। बाल-बच्चों से भी काम कराओ। आपके घर नौकर है, (नौकर रखने की जरूरत है तो रखो)। नौकर रख कर नौकरों के वशीभूत मत हो जाओ। नौकर बढ़िया काम नहीं करेगा ठीक बात है। आपको भी सब काम करना आना चाहिये। नौकर जितना काम करते हैं, आपको आ जाय तो आपको चकमा नहीं दे सकते। कहें—घी तो इतना लग गया। अरे! लग गया तो हम जानते हैं। इतना घी कैसे लग गया? आप काम करना जानोगे तो आप शासन कर सकोगे। इतना लग गया। हाँ साहब लग गया। तो बस लग गया। कैसे बतायें यह बात? काम धन्धा करने में बेइज्जती समझने लगे आजकल।

माता सीता काम करती थीं। रसोई बनाती थीं। लक्ष्मण आदि देवर थे, उन्हें बड़े प्यार से भोजन कराती थीं। स्वयं खट करके, परिश्रम करके सासुओं की सेवा करती थी। क्या वह छोटे घर की हो गई? हजारों दासियां थीं उनके सामने, हजारों, सैंकड़ों ही नहीं, लेकिन अपने घर का काम करती थीं। अपने घर के काम में कौन-सी बेइज्जती है भाई? नौकरी करने में तो बेइज्जती नहीं समझतीं, घर के काम करने में बेइज्जती समझती हैं; बड़े पतन की बात है। अतः अपना समय ठीक तरह से लगाओ। अच्छी आदत बनने पर आपकी ग्राहकता हो जायेगी। सब आपको चाहेंगे आपकी आवश्यकता पैदा होगी। घर के, बाहर के सब लोग चाहेंगे और यदि ऐसा

नहीं करोगे तो समय तो निकल जायेगा हाथों से, और आदत बिगड़ जायेगी। बिगड़ी हुई आदत साथ चलेगी, स्वभाव बिगड़ जायेगा। यह जन्म-जन्मान्तरों तक साथ चलेगा। स्वभाव जिसने अपना निर्मल, शुद्ध बना लिया है, उसने असली काम बना लिया है। साथ में चलने की असली पूंजी संग्रह करली अपने। अपने स्वभाव को शुद्ध बनाओ, निर्मल बनाओ। तो क्या होगा? ममता छूटेगी। सेवा करने से अहंकार छूटेगा। निर्मम-निरहंकार हो जाओगे। संसार का काम करते करते ऊंची से ऊंची स्थिति को प्राप्त हो जाओगे। बस, लग जाओ, तब काम होगा। इस वास्ते भाइयों से, बहिनों से कहना है कि सत्संग सुनो और सुनने के अनुसार अपना जीवन बनाओ। ऐसा जीवन बनेगा, तो जीवन निर्वाह होगा और मन में शान्ति रहेगी। अपने को स्वतन्त्रता होगी। इस वास्ते–"**निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति**" ॥२।७१॥ महान् शान्ति की प्राप्ति होगी। भगवद्गीता व्यवहार में परमार्थ सिखाती है। युद्ध के समय में कह दिया—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥२।३८॥

युद्ध से परमात्मा की प्राप्ति हो जाय, काम को भगवान् का समझो, उत्साह से करो। सेवा करने वाला पवित्र होगा। पर भगवान् का भजन हरदम करते रहो जिससे सद्‌बुद्धि कायम रहे। भगवान् की याद बनी रहे।

नारायण....नारायण....नारायण

श्री हरि :

पंचामृत

ध्यान से सुनो—बढ़िया बात बता रहा हूं। आप जहां रहते हैं, वहां अपने घर में रहते हैं परन्तु अपने घर का तो महात्म्य नहीं है। भगवान् के दरबार में रहें तो बड़ा भारी महात्म्य है। घर आपका तो आपने माना है। घर पहले से भगवान् का ही था। अब भी है और पीछे भी भगवान् का ही रहेगा। मरोगे तो घर साथ थोड़े ही चलेगा। यह तो भगवान् का ही हुआ। अतः आज से आप मान लो कि भगवान् के घर में रहते हैं। साक्षात् भगवान् के घर में ही रहते हो। हरिद्वार आते हैं तो कहते हैं—ओ हो! हर की पेड़ियां हैं ये तो। वृन्दावन आ गये तो कहते हैं—भगवान् की लीला-भूमि में हैं। अयोध्या में आ गये तो भगवान् के दरबार में आ गये। कितनी सस्ती बात है। भगवान् का दरबार मान लो, भगवान् का घर मान लो, तो वही वृन्दावन हो गया। हरदम यही बात रहे कि हम तो भगवान् के घर में ही रहते हैं। खास लाड़ले हैं हम तो भगवान् के, भगवान् के घर में रहते हैं। आज से यह बात मान लो। अपने-अपने घरों को अपना घर मत मानो। अरे! भगवान् का घर मानो। बात सच्ची है। अपना घर तो बीच में माना है। पहले भगवान् का था और पीछे भी भगवान् का रहेगा। फिर बीच में अपना कैसे आ गया? छापा मारा है मुफ्त में! अपना है नहीं।

एक बात और ध्यान देना—जो भी काम करो, भगवान् का करो। चाहे खेती करो, चाहे घर का काम धन्धा करो, चाहे भोजन करो, और चाहे भजन करो, चाहे कपड़ा धोओ, चाहे स्नान करो, क्योंकि शरीर भी भगवान् का है। तो भगवान् की सेवा के लिये है। खाना-पीना भी भगवान् का काम है। तो काम धन्धा भी भगवान् का ही करते हैं। नीचे उतरें ही नहीं; क्योंकि संसार सब भगवान् का। सब संसार के मालिक भगवान्। सब शरीरों के मालिक भगवान्। तो शरीरों का और संसार का काम किसका हुआ? भगवान् का ही हुआ! कैसी मौज की बात है। तो भगवान का ही काम करें। भगवान् के दरबार में रहते हैं और काम धन्धा भी भगवान् का ही करते हैं–दो बातें हुई।

अब तीसरी बात–घर में जितनी चीजें हैं ये भी भगवान् की ही हैं। घर भगवान् का और आप भगवान् के तो चीजें किसी दूसरे की हो सकती हैं क्या? माताओं और बहिनों को चाहिये कि उन भगवान् की चीजों को ले कर रसोई बनावें। कहें—ओ हो! ठाकुर जी का प्रसाद बना रहीं हैं। मैं तो ठाकुर जी को भोग लगाने के लिए प्रसाद बना रही हूँ। ठाकुर जी के ही भोग लगावें। ठाकुर जी का भोग लगा कर घर के जितने लोग हैं, उनको ठाकुर जी के जन (पाहुने) समझ कर प्रसाद जिमावें। तो, उन्हें प्रसाद पवायें कि ये सब ठाकुर जी के प्यारे जन हैं। ठाकुर जी के ही प्यारे लाड़ले बालक हैं। इनको भोजन करा रही हूँ। ठाकुर जी की सेवा कर रही हूँ। बालक है तो उसे प्यार करके सेवा करें तो मां राजी हो जावे। अपने बच्चे का प्यार करे तो माता राजी हो जावे

कि नहीं? ऐसे ही भगवान् के बालकों की सेवा करें तो भगवान्

राजी हो जावें। कैसी मौज की बात है। भगवान् की रसोई बनाई, भगवान् के ही भोग लगाया और भगवान् के ही बालकों को भोग पवा दिया। प्रसाद जिमा दिया। अपने भी भोजन करे तो ठाकुर जी का प्रसाद समझते हुए भोजन करें। ठाकुर जी का प्रसाद है। कैसी मौज की बात। केवल भोजन ही नहीं **"तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं"**। (मानस २/१२८/१) गहना पहने ठाकुर जी के अर्पण कर के। ठाकुर जी का ही कपड़ा पहने। प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं। सब चीजें प्रसाद रूप में ग्रहण करें तो सब चीजें पवित्र हो जाती हैं। ठाकुर जी के अर्पण करने पर पवित्र हो जाती हैं। आपने देखा है कि नहीं। ठाकुर जी के प्रसाद लगावें और वह दें तो हरेक आदमी हाथ पसारेगा। छोटे से छोटा कणका दो तो वह राजी हो जायेगा। लखपति हो, करोड़पति हो, आपके सामने हाथ पसारेगा और प्रसाद का आप छोटा सा कणका दे दें, वह राजी हो जावेगा। वह क्या मीठे का भूखा है? कोई लखपति, करोड़पति आपसे प्रसाद माँगे तो कहें, चलो बाजार में मीठा दिलाऊं आपको। नाराज हो जायेगा। तो वह धनी आदमी कहेगा कि मिठाई का भूखा हूं क्या मैं? हमें तो प्रसाद चाहिये, प्रसाद। कितना महत्त्व है? बताओ? ठाकुर जी का प्रसाद है। घर में सब चीजें ठाकुर जी की हैं। आप करें तो एक बात बतावें बहुत बढ़िया। कृपा करके कर लो बहुत बढ़िया बात है। फायदे की बात है। घर में जितना धन पड़ा है सब पर तुलसीदल रख दो। जितने गहने-कपड़े हैं तुलसीदल रख दो। जितने रुपये-पैसे पड़े हैं तिजोरियों में सब पर तुलसीदल रख दो। घर पर ही धर दो। जितने भी गाय, भेड़, बकरी हैं तुलसी-

दल रख दो। छोरा-छोरी पर भी धर दो। किनके हैं? ठाकुर जी के बालक हैं।

एक चमत्कार है। आप कर सको तो बतावें। कर सकते हो, पर हृदय से करो, जब होवे। छोरा उद्दण्ड है और मानता नहीं। सच्चे हृदय से अपनी ममता उठा लो कि मेरा है ही नहीं। केवल ठाकुर जी का ही है। छोरा बिल्कुल सुधर जायेगा। जैसे, ठाकुर जी के भोग लगने से चीजें पवित्र हो जाती हैं। बड़े-बड़े पुरुष आदर करते हैं। ऐसे सच्चे हृदय से अपनी ममता बिल्कुल मिटा कर, केवल ठाकुर जी का ही मानलें। तो वह शुद्ध हो जायेगा। पवित्र हो जायेगा। ऐसी बात करके देखो। शर्त यह है कि अपनी ममता बिल्कुल उठा लें। जैसे मुसलमानों का छोरा है, ऐसा ही यह छोरा है। मर जाय तो कोई असर नहीं हमारे पर। हमारा छोरा नहीं, मरा तो ठाकुर जी का। और ठाकुर जी का मरता है नहीं। यहाँ मर गया तो वहां जन्मा। ठाकुर जी से बाहर है नहीं। हम क्यों रोवें? छोरा पवित्र हो जाये। एकदम बात ठीक है। ममता ही मलिनता है। इसके कारण ही मलिन होता है। दान-पुण्य करते हैं तो बालकों के देने में दान-पुण्य नहीं मानते। इनके साथ अपना कोई सम्बन्ध नहीं। "दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे" । (१७/२०) । अनुपकारणे का अर्थ यह नहीं कि कोई उपकार न करदे हमारा। मानों पहले उपकार किया नहीं और अगाड़ी भी आशा नहीं है। ऐसे को दिया जाय। जिनसे अपने स्वार्थ का सम्बन्ध न हो। तो जिनके साथ स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं उनको दो। और चाहे घर वालों के साथ स्वार्थ का सम्बन्ध न रखो। तो जिनके साथ स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं, उनको दो। एक ही बात रहेगी। टोटल एक आयेगा। मान लो हिसाब कराया। चाहे तो

अपनापन न मानो, वहां सेवा करो अथवा जहां सेवा करो वहाँ अपनापन मिटा दो। एक ही बात हुई।

ठाकुर जी की चीज है, ठाकुर जी की ही सेवा करते हैं। कुटुम्ब सब ठाकुर जी का है। भगवान् का है। मौज हो गई अपनी तो, भगवान् का ही है सब कुछ। कैसी बढ़िया बात। आज जेठ का पहिला दिन है। आरम्भ में ही कर दिया, कैसी मौज की बात है। गंगा दशहरा कब आता है भाई! कल है। कौन से महीने में आता है? वह भी जेठ में है। और सेठजी का जन्म भी जेठ में है। नाम ज्येष्ठ सबसे ऊंचा। जेठ नाम बड़े को कहते हैं। माइयां कहती हैं जेठ जी आ गये। जेठ जी का अर्थ है बड़ा। अपने पति से बड़े हुए जेठ। फिर यह भी जेठ का महीना है। तो बड़े महीने के आरम्भ में बड़ी बात कर दो। सब भगवान् के अर्पण कर दिया। इसमें बड़ी बात क्या होती है। और बताओ कैसी मौज की बात है। कैसा दिन मिला है आज। बस, सब ठाकुर जी का है। अपनी चिन्ता मिट जाय, छोरी का सम्बन्ध हो जाय तो मां-बाप राजी हो जाते हैं कि चिन्ता मिट गई। अच्छे घर चली गई हमारी कन्या, बहुत अच्छा हुआ। तो अपनी सबकी सब कन्या बड़े घर चली गई। सब चीज-वस्तु बड़े घर चली गई। मौज करो, कितने आनन्द की बात है। तो भगवान् के दरबार में रहते हैं। भगवान् का काम करते हैं और प्रसाद पाते हैं। कमा कर लाते हैं तो वह भी, कमा करके भगवान् का ही प्रसाद लाते हैं। और भगवान् के जनों को पवाते हैं। हम भी भगवान् का ही प्रसाद पाते हैं। हरदम। यह पंचामृत है। भगवान् के हैं हम। भगवान् के दरबार में रहते हैं। भगवान् का ही काम करते हैं। भगवान् के प्रसाद से भगवान् के जनों की सेवा करते हैं।

श्रौर मैं भी भगवान् का ही प्रसाद पाता हूं। यह पंचामृत है असली। श्राज से इस बात को पकड़ लिया। बस "सर्वं भावेन् माम् भजति" श्रौर सब भावों से भगवान् का ही भजन करें। काम करें, सब काम ठाकुर जी का ही है। बताया ना—स्नान करें, शरीर को शुद्ध करें, ठाकुर जी का काम करूं मैं तो, क्योंकि ठाकुर जी का शरीर है। ठाकुर जी का काम करता हूं मैं तो, ठाकुर जी पर एहसान कर सकते हैं। महाराज श्रापका काम करता हूं। एक ब्राह्मण कहा करते थे—मैं रोज एक ब्राह्मण जिमाता हूं। स्वयं भोजन करते थे कि नहीं। रोज एक ब्राह्मण जिमाता हूं। महाराज! यह कितनी बढ़िया बात है। रोज ब्राह्मण जिमाना, कितनी बढ़िया बात है? ऐसे ही परिवार का परिवार ठाकुर जी का। परिवार के परिवार का पालन करता हूं ठाकुर जी का। कैसी मौज की बात। कितनी ऊंचे दर्जे की बात श्रौर गुप्त दान दो। पता नहीं लगे किसी को। ठाकुर जी कहें—मेरे परिवार का पालन करता है भाई! भगवान् पर एहसान पड़ेगा। हां, ठीक बात है। यह श्रपनापन नहीं रखता है। श्रपनी ममता नहीं रखता है। यह तो मेरे परिवार का पालन करता है। "सर्वं भावेन माम् भजति" सब भाव से भगवान् का ही काम हो जाय, यह श्रव्यभिचारी भक्ति हो जाय। श्रपने कुछ लेना नहीं, श्रपनी ममता नहीं है। न स्वार्थ है, न ममता, उसमें मेरापन नहीं, कुछ लेना नहीं है। घर वाले मानें या न मानें। सेवा करें या न करें। श्रपने को तो ठाकुर जी के परिवार का पालन करना है। भजन—उनकी सेवा करनी है। भाई! परिवार के लोग काम न करें तो राजी। बहुत श्रच्छी बात है। काम कर दें, श्रनुकूल चल देंगे। हमारा किया हुश्रा तो बिक्री हो जायगा। सेवा की हुई बिक्री

हो जायेगी । इस वास्ते यदि वे कुछ भी नहीं करें और दुख दें तो अच्छा है । कष्ट दें । सासू भी दुख दे, बहू भी दुख दे, देवरानी-जिठानी, ननद आदि सब दुख देवें । इतने राजी हो गये, इतने राजी हो गये, बहुत ही निहाल हो जावे । अपने तो सेवा करनी है और ये दुख देवें तो डबल फायदा हो गया । एक तो सेवा का लाभ होगा और ये दुख दें तो पाप कटेंगे । बोलो ! हरदम मौज रहेगी । दुख कब रहेगा, बताओ ? दुख देने में भी आनन्द होगा । दुख की जगह ही नहीं रही । सब गली बन्द हो गई । तो वह सर्ववित है । सब जानने वाला है । ठीक तरह से समझ गया । यदि सुखी और दुखी होता है तो समझा नहीं । संसार से सुखी और दुखी होता है तो समझा नहीं । हम तो मस्ती में बैठे हैं । अपने को कोई किंचिन्मात्र भी दुख नहीं । सबका भरण-पोषण करते हैं । सब का पालन करते हैं । दुख है ही नहीं । तो ऐसे भगवान् के भक्तों को दुख होता ही नहीं । वे हरदम मौज में रहते हैं । इतने मस्त रहते हैं कि उनके संग से मस्ती हो जाती है । ठाकुर जी की याद करने से बन्धन टूट जाय । नाम लेने से, याद करने से, लीला सुनने से पाप नष्ट हो जायें इतने महान् पवित्र ।। "पवित्राणाम् पवित्रोयम् मंगलानाम् च मंगलम्" तो "संऽर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत" सब भाव से मेरा ही भजन करता है, चलते-फिरते, हरदम

मूल में बात क्या है ? एक छोटी सी बात है । "मैं भगवान् का ही हूँ" बस और का नहीं हूँ । सेवा करने के लिये संसार का, परन्तु किसी से मतलब निकालने के लिये किसी का नहीं हूँ । केवल भगवान् का हूँ केवल अपने को भगवान् का मान लो तो घर भगवान् का, दरबार भगवान् का, परिवार भगवान् का, सम्पत्ति भगवान् की, काम भगवान् का, प्रसाद

भगवान् का, सब भगवान् का हो जायेगा। यह बात एकदम सच्ची है। आपको बतावें बिल्कुल अनुभव की बात। जिस बालक को मां ने अपना माना है। अपना बालक है। मेरा छोरा है। ऐसा जिसका भाव है। वह छोरा दौड़ कर गोद में चढ़ जाय तो मां हँसेगी। पीछे से पीठ पर चढ़ जाय तो मां हँसेगी। बोलो, बड़ा भारी काम कर दिया। खेलता है तो मां हँसेगी और जानकर ऊं ऊं ऊं कर के रोता है। तो देखो ठगाई करता है मेरे से, माँ हंसती है। छोरे की वह कौन सी क्रिया है, जिससे मां को प्रसन्नता नहीं होती है। वह बालक जो करता है माँ उससे राजी होती है। कारण क्या है? छोरा मेरा है। और क्या? ऐसे ही हम भगवान् के वन कर जो भी करें, हमारी हर क्रिया भगवान् का भजन हो जाय। भजन क्या? भगवान् की प्रसन्नता। कुछ भी काम करो भगवान् खुश होते रहते हैं। मेरा बच्चा है। यह मेरा बालक खेल रहा है। कैसी मस्ती है? बात एक ही है। भगवान् का होना। सच्ची बात है। इतने बैठे हैं। आपसे पूछा जाय कि आपने इस घर में जानकर जन्म लिया है, क्या? जीते हो तो जानकर जीते हो क्या? जानकर जीवें तो मरे कौन भाई, मरे ही नहीं। स्वस्थ शरीर में रहते हो तो जानकर रहते हो क्या? अगर जानकर रहते हो तो बीमार मत पड़ो। शरीर में जो बल-बुद्धि है वह जानकर प्राप्त की है क्या? तो बूढ़े मत हो। पराधीन मत हो। सो तो हो जाते हो। अभिमान घर का है। और कुछ नहीं। जैराम जी की है। कोरा अभिमान करते हो, समझे। इस वास्ते हम ठाकुर जी के हैं। ठाकुर जी के आधीन हैं। ठाकुर जी जो शक्ति दें, वही करते हैं।

हनुमान जी ने कितना काम किया? राम जो लंका में गये

तो पुल बनवाया। पुल बना के पार पहुंचे। परन्तु हनुमान जी

कूद गये । बल किसका है ? बल ठाकुर जी का है। "बार-बार रघुबीर सँभारी", "प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा"।। मैं भगवान् का दास हूं। बाल्मीकि रामायण में आता है कि हनुमान जी ने ऐसी गर्जना करी कि सौ रावण भी आ जायें, सौ हजार रावण भी आ जायें तो मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। मैं ठाकुर जी का दास हूं। मेरे सामने हजार रावण भी कुछ नहीं कर सकते। मैं ठाकुर की का दास हूं।

अपना अभिमान करके दुख पा रही है दुनिया। तो कृपा करके अभिमान छोड़ दो, भगवान् के अर्पण कर दो कि हम तो ठाकुर जी के हैं। अपनी शक्ति सब ठाकुर जी के काम में लगानी है। "त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये" "सर्वं भावेन भजति माम्" सब भाव से भगवान् को भजते हैं। नाम जप भजन है, कीर्तन भजन है, पाठ भी भजन है, सुनना, कहना, सब भजन है। और तो क्या "सर्वं भावेन भजति" उठना, बैठना, खाना, पीना, सोना, जागना; भगवान् का काम कर रहे हैं। कितनी सस्ती बात है? कितनी ऊँचे दर्जे की बात है? कितनी श्रेष्ठ बात है? और कितनी सुगम? अभी, अभी आप मान लो तो निहाल हो जाओ अभी, अभी। हम तो भगवान् के अर्पण हो गये और भगवान् का ही काम करेंगे। काम हमारा है ही नहीं। यह हमारा घर नहीं तो इसका काम हमारा नहीं। हमारा कुछ है ही नहीं। सब भगवान् का काम है।

मैंने सतो से सुना है कि जिनके अपना करके कुछ नहीं है, सब भगवान् का है। अपना कुछ है ही नहीं। न मन अपना है, न बुद्धि अपनी है, न शरीर अपना है, न प्राण अपने

हैं. न इन्द्रियाँ अपनी हैं, न घर है न सम्पत्ति अपनी है। है ही नहीं अपनी। सब चीजें ठाकुर जी की हैं, ठाकुर जी की। जहां रहते हैं, मौज रहती है। आनन्द से ठाकुर जी के अर्पण कर दी सब चीजें। सब भगवान् के अर्पण करदी। निहाल हो गये। मस्ती में रहते हैं हरदम। संतों की एक बात सुनी है हमने। संत बड़े विचित्र होते हैं। बाजार में जाते, बहुत बढ़िया-बढ़िया मिठाई रखी हैं। फल पड़े हैं। यहाँ दुकान सजी हुई है। जहां देखते बढ़िया, वहीं खड़े होते गये, ठाकुर जी भोग लगाइये। बर्फी है, इमरती है, जलेबी है भोग लगाइये। लड्डू है, भोग लगाइये। बस खड़े हो कर मस्ती से भोग लगा दें। अर्पण कर दो, ठाकुर जी के भोग लगाइये। ठाकुर जी के अर्पण कर दो। आप कहो। क्या जोर आवे इसमें? तो करो आप भी। कौन मना करता है? जहाँ बढ़िया चीज देखो, ठाकुर जी के अर्पण कर दो।

सब कुछ ठाकुर जी का है। अब क्या करें? अब तो मौज करेंगे। अब कोई काम हमारा तो रहा नहीं। केवल ठाकुर जी का काम है, ठाकुर जी का नाम है, ठाकुर जी का चिंतन है, ठाकुर जी की बात सुननी है। हमारा काम तो है ही नहीं। आपका काम क्या रहा? ठाकुर जी का काम करते हैं। सब संसार के मालिक भगवान् हैं। तो मालिक के चरणों में मालिक की चीजें अर्पण करते हुए आपको क्या जोर आता है? बताओ, उनकी है भैया। आप कहते हो मेरी है, मेरी। पर कितने दिनों से, कितने वर्षों से मेरी कहते हो? कितने वर्षों तक मेरी कहते रहोगे? आखिर तो वह रहेगी ठाकुर जी की ही। तो जीते जी ही भगवान् को अर्पण कर दो अपने हृदय से, मौज हो जायेगी। कितनी सुगम, कितनी बड़ी भारी बात।

संतों की साखी आती है—"राम नाम की सम्पदा दो अन्तर तक धूरण। कितनी गुप्ती बात है, कहौ बतावे कूंरण"॥ कौन बताता है, ऐसी बढ़िया बात। कितनी बढ़िया बात और कितनी सुगम! कितनी ऊँचे दर्जे की। कितनी निश्चिन्तता की, निर्भयता की, आनन्द की बात है। न चिन्ता है, न भय है, न उद्वेग है, न जीने की इच्छा है, न मरने को इच्छा है। हमारी इच्छा कुछ नहीं। ठाकुर जी की इच्छा में इच्छा मिला दी। अब ठाकुर जी जैसा करें, जैसा रखें। "जाही विधि राखें राम ताहि विधि रहिये। सीताराम सीताराम सीताराम कहिये"। अपनी कोई मांग नहीं, कोई इच्छा नहीं। आनन्द की बात है। कितनी सरल बात, कितनी सुगम बात। आफत हमारी मिट जाय और भगवान् राजी हो जायें। मेरी मानने से चिन्ता रहती है। मेरा कमरा है। अमुक चीज वहां पड़ी है। कपड़ा तो वहां सुखाया था। कोई ले जायेगा तो चिन्ता रहती है। ठाकुर जी को अर्पण कर दिया तो कैसी मौज है। तो गया तो ठाकुर जी का, रहा तो ठाकुर जी का।

नारायण....नारायण....नारायण

सब के सब कर्म परमात्मा के समर्पण कर दो—यह भक्तियोग है। संसार से मिली सामग्री संसार की सेवा में लगा दो। संसार से मुक्त होने की यह सरल युक्ति है।

× × × ×

अपने कर्त्तव्य व धर्म का पालन करने में कष्ट आता है तो वह मुक्ति देता है।

श्री हरि :

शरणागति

भगवान् ने भगवद्गीता में सबसे श्रेष्ठ भक्तियोग को कहा है जो कि शरणागति है। उपदेश भी आरम्भ हुआ है अर्जुन के शरण होने से और अन्तिम उपदेश यही दिया है कि-

सर्व धर्मा न्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।

(गीता १८/६६)

भगवान ने 'गुह्य' कहा, 'गुह्यतर' कहा, 'गुह्यतम' कहा और 'सर्वगुह्यतमं' (१८/६४) कहा। तो सबसे अत्यन्त गोपनीय बात भगवान कहते हैं "मामेकं शरणं व्रज"। मेरी एक की शरण हो जा। अर्जुन ने पूछा था कि "धर्मसम्मूढ़चेताः त्वां पृच्छामि" धर्म के निर्णय करने में मेरी बुद्धि काम नहीं करती, इस वास्ते आपसे पूछता हूँ।

भगवान कहते हैं कि जिसका निर्णय तू नहीं कर सकता, वह मेरे अर्पण कर दे। 'सर्वधर्मान्परित्यज्य'—मेरे में सब अर्पण कर दे। एक मेरी शरण हो जा। अर्जुन धर्म का निश्चय नहीं कर सकता था कि युद्ध करूँ या न करूँ। तो भगवान कहते हैं कि यदि तुझको पता नहीं तो इस दुविधा में मत पड़। इन सबको छोड़कर एक मेरे शरण हो जा। मैं तेरे को संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा। तू चिन्ता मत कर। तो इसमें सब तरह के आश्रय का त्याग कर देना है। किसी का आश्रय नहीं रखना है। मन में किसी अन्य का भरोसा, और आश्रय सब

छोड़ दे। अनन्य भाव से मेरे शरण हो जा। साधन और साध्य इसी को मान। यह शरणागति की सबसे गोपनीय और सबसे बढ़िया बात भगवान ने कही।

इसमें एक बहुत विशेष गहरी रहस्य की बात है 'अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः' मैं तुझे संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू चिन्ता मत कर। यह बहुत विलक्षण बात कही। इसका यह तात्पर्य नहीं है तू शरण होजाये तो तेरा पाप मैं नष्ट करूँगा। अर्जुन को लोभ दिया गया हो, ऐसी बात नहीं है। तू अनन्यभाव से शरण हो जा, धर्म की परवाह मत कर तू धर्म का त्याग करेगा तो पाप का ठेका मेरे आ गया। गीता में कहा है 'नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते' (गीता २/४०) निष्काम भाव से जो कर्म करता है उसका उल्टा फल नहीं होता। अधर्म होता ही नहीं। तू केवल मेरी शरण होजा। इसके बाद कोई चिन्ता मत कर। शरण होने के बाद मन में कोई चिन्ता भी हो जाय, किसी तरह की विपरीत भावना भी पैदा हो जाय, मन भी परमात्मा में न लगे, संसार के पदार्थों में राग-द्वेष भी हो जाय, तत्परता और निष्ठा न दिखाई दे-इस तरह की कमियां मालूम देवें तो उन कमियों के लिये तू चिन्ता मत कर-यह तात्पर्य है। भगवान की शरण होने पर उसको किसी तरह की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। निश्चिन्त हो जाना चाहिये। निर्भय और निःशोक होना चाहिये। निःशंक होना चाहिये। लोक में क्या दशा होगी, परलोक में क्या होगा, यहां यश होगा कि अपयश होगा, निन्दा होगी कि स्तुति होगी, ठीक होगा कि बेठीक होगा, लाभ होगा कि हानि होगी, लोग आदर करेंगे या निरादर करेंगे—इन बातों की तरफ ख्याल ही मत कर। केवल अनन्य शरण होजा। और सब आश्रय छोड़ दे।

तू भय मत कर। शोक भी मत कर और शंका भी मत कर। जो वस्तु चली गई उसका शोक होता है। और विचार में बात आती है तो शंका होती है। शोक और शंका का भी त्याग कर दे। 'मा शुचः' का तात्पर्य है कि तू किसी तरह का किंचित मात्र भी सोच मत कर।

मैं तो भगवान के शरण हो गया। जैसे कन्यादान करने पर लड़की समझ लेती है मेरा तो विवाह हो ही गया। बस एक से सम्बन्ध हो गया। अब उम्र भर यह अटल अखण्ड सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध के बाद पति रहे, न रहे, वह आदर करे, अनादर करे छोड़ दे, सन्यासी हो जाय। किसी तरह करे। हमारी भारत की नारी ऐसी है कि एक जिसको स्वीकार कर लिया, तो कर लिया, इसी का सिद्धान्त संतो ने दिया है कि पतिव्रता रहे पति के पासा, यूं साहिब के ढिग रहे दासा। दास भगवान के पास ऐसे रहे जैसे पतिव्रता रहती है। उसके एक ही मालिक; एक हीतरफ उसका विचार रहता है। उसकी राजी में राजी। उसकी सेवा करना। **'एकइ धर्म एक व्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा ।।'** मानस ३/४/५

उसका एक ही धर्म है, एक ही व्रत है, एक ही नियम है–शरीर, मन, वाणी से केवल पति के चरणों में प्रेम। इसी तरह भगवान की शरण होजा। यह कैसे हो ? एक ही व्रत कि मैं भगवान का हूँ। भगवान का धर्म, भगवान की आज्ञा, भगवान की अनुकूलता–वही धर्म है। केवल भगवान का ही मैं हूँ, व्रत नियम और किसी का नहीं। और किसी का नहीं हूँ–इसका तात्पर्य क्या है ? किसी से किंचित मात्र कभी भी कुछ लेना नहीं। किसी से किंचित मात्र भी कोई अभिलाषा नहीं रखनी है। पतिव्रता होती है वह घर में सबकी सेवा करती है।

सास, ससुर. देवर, जेठ, जेठानी, देवरानो, ननद ग्रादि की सेवा करती है। समय पर अतिथि सत्कार भी करती है। साधुओं को भी भिक्षा दे देती है; परन्तु अपना संबंध किसी के साथ नहीं। देवर, जेठ आदि से सम्बन्ध है तो पति के नाते से ही है। स्वतंत्र सम्वन्ध किसी से कुछ भी नहीं। इसी तरह एक व्रत लेलें कि केवल भगवान से ही मेरा सम्बन्ध है। और किसी से कुछ संबंध नहीं है। नियम है तो भगवान के भजन का, और भगवान के शरण होने का। एक यही नियम है। ऐसे अनन्य भाव से मेरे शरण होजा। किसी अन्य का आश्रय न रहे।

दूसरों की सेवा करने में, काम कर देने में, शास्त्र के अनुसार सुख पहुँचाने में दोष नहीं है। दोष है अपने कुछ चाहने में, भगवान के शरण होने पर किसी से कभी भी किंचित मात्र भी चाहना न हो। **"मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा।।"** मानस (७/४५/२) भगवान का दास कहलवा करके किसी से भी किंचित मात्र भी आशा रखता है तो भगवान का दास कहाँ हुआ? जिस चीज की आशा रखता है, उसी का दास है। भगवान से भी धन, सम्पत्ति आदि चाहता है तो वह भगवान का दास नहीं है। वह धन, सम्पत्ति का दास है, भगवान को तो एक साधन मानता है। वह भगवद् भक्त नहीं है। ऐसे किसी से किंचित मात्र भी कुछ नहीं चाहता। न आशा है, न भरोसा है, न बल है, न उसका किसी से सम्बन्ध है। ऐसे केवल अनन्य भाव से मेरे शरण हो जाय, और शरण होकर के फिर निश्चित हो जाय। "मा शुचः" का अर्थ है किसी विषय की चिन्ता मत कर। किसी बात की भी कोई चिन्ता आ जाय तो कह दे भाई मैं चिन्ता नहीं करूंगा। तो चिन्ता मिट जायगी। दृढ़ता रहने पर चिंता

आ भी जायगी तो ठहरेगी नहीं। चिन्ता तभी तक आती है, जब तक आप अपने में कुछ बल का अभिमान रखते हैं। बल का अभिमान कैसा ? चिन्ता आती है तो इसमें एक सूक्ष्म बात रहती है। चिन्ता हुई कि धन नहीं हैं। तो अर्थ होता है कि मैं धन कमा सकता हूँ, ले सकता हूँ, और जब मैं धन कमा सकता हूँ तो यह अपने बल का भरोसा, व अहंकार हुआ। धन के अभाव का तो अनुभव हो जायगा, परन्तु चिन्ता नहीं होगी। ऐसे कोई रोग हो जाय तो क्या करूं ? रोग दूर नहीं होता—ऐसी चिन्ता नहीं होगी। रोग होता है, अच्छा तो नहीं लगता। परन्तु रोग दूर नहीं होता, ऐसी चिन्ता नहीं होगी। चिन्ता तभी होती है, जब रोग दूर करने में अपने पर विश्वास होता है, अपना कोई भरोसा होता है। अपने पर भरोसा बिल्कुल मत रखो। अपने बल का, विद्या का, बुद्धि का, योग्यता का, अधिकार का बल बिल्कुल नहीं रखना है। "सुने री मैंने निर्बल के बल राम।" सर्वथा केवल भगवान का ही बल है, हमारा बल कुछ नहीं। तो बल रहने से चिन्ता होती है। यह बारीक बात है, भाई लोग ध्यान दें। जब कभी चिन्ता होती है तो इसका अर्थ यह होता है कि मैंने यह नहीं किया, वह नहीं किया यह कर लूंगा। ऐसा कर लूंगा। उसे मैं कर लूंगा, तब चिन्ता होती है।

शरण तो हो गया पर भगवान् के दर्शन ही नहीं हुए। भगवान के चरणों में प्रेम ही नहीं हुआ। मेरी तो ऐसी अनन्य गाढ़ प्रीति भी नहीं हुई। तो इन बातों के न होने का अभाव तो खटकता है पर चिन्ता नहीं होनी चाहिए, क्योंकि यह मेरे हाथ की बात नहीं। मैं तो भगवान् को ही पुकारूं। भगवान् का ही हूं। अब उनकी मर्जी होगी तो प्रेम करेंगे, मर्जी होगी

तब दर्शन देंगे, मर्जी होगी तब अनन्य भक्त बनायेंगे। अब वे मर्जी आवे जैसा बनाओ। अपने-आप को तो दे दिया। जैसे कुम्हार मिट्टी को गीली करके रौंदता है। वह रौंदता है तो मर्जी है, बनाता है तो मर्जी है, पहिले सिर पर उठा कर लाया तो मर्जी है, चक्के पर चढ़ाकर घुमाता है तो उसकी मर्जी है। मिट्टी नहीं कहती कि क्या बनाते हो? घड़ा बनाओ, शकोरा बनाओ, मटकी बनाओ, चाहे सो बनाओ। मिट्टी अपनी कोई मर्जी नहीं रखती। इसी तरह हमें प्रेम की कमी मालूम पड़ती है। पर यह भी मालूम न होने देना अच्छी बात है कि मेरे को क्या मतलब प्रेम से, दर्शन से, भक्ति से। मैं तो भगवान का हूँ—ऐसे निश्चिन्त हो जायें। कमी मालूम देना दोष नहीं है, पर कमी की चिन्ता करना दोष है। अपना बल कुछ नहीं है। अपने तो उसके चरणों में आ गए। अब उसके हैं। अब वह चाहे जन्म-मरण दे। जैसी मर्जी हो, वैसे करो। यह संकल्प-विकल्प सब तरह के छोड़ करके केवल मेरी शरण हो जाय।

तू चिन्ता कुछ भी मत कर। भक्त के जितनी निश्चिन्तता अधिक होती है, उतना ही प्रभाव भगवान की कृपा का विशेष पड़ता है, और जितनी वह खुद चिन्ता कर लेता है, उतना वह प्रभाव में बाधा दे देता है। तात्पर्य, भगवान के शरण होने पर भगवान की तरफ से जो कृपा आती है, उस अटूट, अखण्ड, विलक्षण, विचित्र कृपा में बाधा लग जाती है। भगवान देखते हैं कि वह तो खुद चिंतित है तो खुद ठीक कर लेगा, तो कृपा अटक जाती है। जितना निश्चिन्त हो सके, निर्भय हो सके, निःशोक हो सके, निःशकहो सके, संकल्प-विकल्प से रहित हो सके, उतनी ही अच्छी शरणागति

है। कह दो कि अपनी ओर कोई भार ही नहीं है। अपनी तरफ कोई बोझा ही नहीं है, अपनी तरफ कोई जिम्मेदारी नहीं हैं। अब तो सर्वथा हम भगवान के हो गए।

भगवान से कुछ भी चाहता है कि मेरे ऐसा हो जाय तो वह भगवान से अलग रहता है। जैसे एक अरबपति का लड़का पिता से कहे कि मेरे को दस हजार रुपये मिल जायें। इसका अर्थ होता है कि वह पिता से अलग होना चाहता है। वास्तव में करोड़ों, अरबों मेरे ही तो हैं। मेरे को कुछ नहीं लेना है। लेने की इच्छा होती है तो वह भगवान से अलग कर देती है, भगवान की आती हुई कृपा में आड़ लगा देती है। जैसे बिल्ली का बच्चा होता है, उसे अपना ख्याल ही नहीं रहता कि कहाँ जाना है, क्या करना है। वह तो अपनी माँ पर निर्भर रहता है। बिल्ली उसे पकड़ लेती है तो बच्चा अपने पंजे सिकोड़ लेता है। कुछ भी बल नहीं करता। अब जहाँ मर्जी हो वहाँ रख दे, चाहे जहाँ ले जाय, उस बिल्ली की मर्जी। ऐसे ही भगवान का भक्त उसी की तरफ देखता है। उसके विधान में प्रसन्न रहता है। उसे सुख-दुःख, सम्पत्ति विपत्ति, संयोग-वियोग, आदर-निरादर, प्रशंसा-निन्दा से कोई सरोकार ही नहीं। अपनी तरफ से कोई चिन्ता नहीं, विचार आ जाय तो भगवान को पुकारे, "हे नाथ मैं क्या करूँ ?" इस तरह से चिन्ता छोड़कर उसके शरण हो जाय।

प्रश्न : शरणागत का जीवन कैसा होता है ?

उत्तर : गीता के अनुसार कर्त्तव्य-कर्म का त्याग नहीं करना चाहिये। अपितु सम्पूर्ण धर्मों को यानी कर्मों को भगवान के अर्पण करना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। जब सम्पूर्ण कर्म भगवान

के समर्पण करके भगवान के ही शरण होना है तो फिर अपने लिये धर्म के निर्णय की जरूरत ही नहीं रही।

मैं भगवान का हूँ और भगवान मेरे हैं—इस अपनेपन के समान योग्यता, पात्रता, अधिकार आदि कोई भी नहीं है। यह सम्पूर्ण साधनों का सार है। इस वास्ते शरणागत को अपनी वृत्तियों आदि की तरफ न देखकर भगवान के अपनेपन की तरफ ही देखते रहना चाहिये।

मेरे शरण होकर तू चिन्ता करता है, यह मेरे प्रति अपराध है, शरणागति में कलंक है और इसमें तेरा अभिमान है। मेरे शरण होकर मेरा विश्वास, व भरोसा न रखना—यही मेरे प्रति अपराध है और अपने दोषों की चिन्ता करना तथा मिटाने में अपना बल मानना—यह तेरा अभिमान है। इनको तू छोड़ दे। तेरे आचरण, वृत्तियां, भाव शुद्ध नहीं हुए हैं, दुर्भाव पैदा हो जाते हैं और समय पर दुष्कर्म भी हो जाते हैं तो भी तू इनकी चिन्ता मत कर। इन दोषों की चिन्ता मैं करूँगा।

भगवान जो कुछ विधान करते हैं, वह संसार के सम्पूर्ण प्राणियों के कल्याण के लिये ही करते हैं। बस, शरणागत की इस तरफ दृष्टि हो जाय तो फिर उसके लिये कुछ करना बाकी नहीं रहता।

जो मनुष्य सच्चे हृदय से प्रभु की शरणागति को स्वीकार कर लेता है तो उसका यह शरण-भाव स्वतः ही दृढ़ होता चला जाता है।

भगवान् भक्त के अपनेपन को ही रखते हैं, उसके गुण-अवगुणों को नहीं देखते अर्थात् भगवान् को भक्त के दोष दीखते ही नहीं।

शरणागत भक्त–"मैं भगवान का हूँ और मेरे भगवान हैं" इस भाव को दृढ़ता से पकड़ लेता है तो उसकी चिन्ता, भय, शोक, शंका आदि दोषों की जड़ कट जाती है, अर्थात् दोषों का आधार कट जाता है। क्योंकि सभी दोष भगवान की विमुखता पर ही टिके हुए रहते हैं।

भगवान के शरण होकर ऐसी परीक्षा न करें कि जब मैं शरण हो गया हूँ, तो ऐसे लक्षण मेरे में नहीं हैं तो मैं भगवान के शरण कहाँ हुआ ?

इस प्रकार सन्देह, परीक्षा और विपरीत भावना—इन तीनों का न होना ही भगवान के सम्बन्ध को दृढ़ता से पकड़ना है। शरणागत भक्त में तो ये तीनों ही बातें आरम्भ में ही मिट जाती हैं।

मनुष्य जब भगवान के शरण हो जाता है, तो वह प्राणियों से, सम्पूर्ण विघ्न-बाधाओं से निर्भय हो जाता है। उसको कोई भी भयभीत नहीं कर सकता। उसका कोई भी कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

जीव का उद्धार केवल भगवत्कृपा से ही होता है। साधन करने में तो साधक निमित्त मात्र होता है; परन्तु साधन की सिद्धि में भगवत्कृपा ही मुख्य है। इस दृष्टि से भगवान के साथ किसी तरह का सम्बन्ध जोड़ लिया जाय, वह जीव का कल्याण करने वाला है। जिन्होंने किसी प्रकार भी भगवान से सम्बन्ध नहीं जोड़ा, उदासीन ही रहे, वे तो भगवान की प्राप्ति से वंचित ही रह गये।

भगवान का अनन्त ऐश्वर्य है, माधुर्य है, सौन्दर्य है; भगवान की अनेक विभूतियाँ हैं, इन सब की तरफ शरणागत

भक्त देखता ही नहीं। वह तो केवल भगवान के शरण हो जाता है और उसका केवल एक भाव रहता है कि मैं केवल भगवान के शरण हूँ, और केवल भगवान मेरे हैं। शरणागत की दृष्टि तो केवल भगवान पर ही रहनी चाहिये, भगवान के गुण, प्रभाव आदि पर नहीं।

प्राणी ज्यों-ज्यों दूसरा आश्रय छोड़ता जाता है, त्यों ही त्यों भगवान का आश्रय दृढ़ होता चला जाता है, और ज्यों ही भगवान का आश्रय दृढ़ होता है, त्यों ही भगवत्कृपा का अनुभव होने लगता है। जब सर्वथा ही भगवान का आश्रय ले लेता है तो भगवान की पूर्ण कृपा उसको प्राप्त हो जाती है।

भगवान गीता (१८/५७) में अर्जुन से कहते हैं कि चित्त से सम्पूर्ण कर्मों को मेरे में अर्पण करके तू मेरे परायण हो जा और समता का आश्रय लेकर मेरे में चित्त वाला हो जा। इस श्लोक में भगवान ने चार बातें बतायी—(१) संपूर्ण कर्मों को मेरे अर्पित कर दे। (२) स्वयं को मेरे अर्पित कर दे (३) समता का आश्रय लेकर संसार का सम्बन्ध विच्छेद कर दे, और (४) तू मेरे साथ अटल सम्बन्ध कर ले। शरणागत के लिए यह बातें आवश्यक हैं।

साधन काल में जीवन-निर्वाह की समस्या, शरीर में रोग आदि विघ्न बाधाएँ आती हैं परन्तु उनके आने पर भी भगवान की कृपा का सहारा रहने से साधक विचलित नहीं होता। उन विघ्न बाधाओं में उसको भगवान की विशेष कृपा दीखती है।

श्री हरि :

मन की चंचलता कैसे दूर हो ?

मनुष्य ने यह समझ रखा है कि मन को कब्जे में करना बहुत आवश्यक है। मन नहीं लगा तो कुछ नहीं हुआ। राम राम करो तो क्या फायदा ? मन तो लगा ही नहीं। मन लग जाय तो ठीक हो जाय। परन्तु मन का लगना या न लगना खास बात नहीं है। मन में संसार का जो राग है, आसक्ति है, प्रियता है, यही अनर्थ का हेतु है। मन लग भी जायगा, तो सिद्धियों की प्राप्ति हो जायगी, विशेषता आ जायगी; परन्तु जब तक संसार में आसक्ति है, कल्याण नहीं होगा। जब भीतर से राग और आसक्ति निकल जायगी, तब जन्म-मरण छूट जायगा। दु:ख होगा ही नहीं; क्योंकि राग और आसक्ति ही सब दु:खों का कारण है।

पदार्थों में, भोगों में, व्यक्तियों में, वस्तुओं में, घटनाओं में जो राग है, मन का खिंचाव है, प्रियता है, वही दोषी है। मन की चंचलता इतनी दोषी नहीं है। वह भी दोषी तो है, परन्तु लोगों ने केवल चंचलता को ही दोषी मान रखा है। वास्तव में दोषी है राग, आसक्ति और प्रियता। साधक के लिये इस बात को जानने की बड़ी आवश्यकता है कि प्रियता ही वास्तव में जन्म-मरण देने वाली है।

ऊँच-नीच योनियों में जन्म होने का हेतु गुणों का संग है। आसक्ति और प्रियता की तरफ तो ख्याल ही नहीं है, पर चंचलता की तरफ ख्याल होता है। विशेष लक्ष्य इस बात का

रखना है कि वास्तव में प्रियता बांधने वाली चीज है। मन की चंचलता उतनी बांधने वाली नहीं है। चचलता तो नींद आने से भी मिट जाती है, परन्तु राग उसमें रहता है। राग (प्रियता) को लेकर वह सोता है।

मेरे को इस बात का बड़ा भारी आश्चर्य है कि मनुष्य राग को नहीं छोड़ता ! आपको रुपये बहुत अच्छे लगते हैं। आप मान-बड़ाई प्राप्त करने के लिये १०-२० लाख रुपये खर्च भी कर दोगे; परन्तु रुपयों में जो राग है, वह आप खर्च नहीं कर सकते। रुपयों ने क्या विगाड़ा है? रुपयों में जो राग है, प्रियता है, उसको निकालने की जरूरत है। इस तरफ लोगों का ध्यान ही नहीं है, लक्ष्य भी नहीं है। इस वास्ते आज कहता हूँ। आप इस पर ध्यान दें। यह जो राग है, इसकी महत्ता भीतर में जमी हुई है। वर्षों से सत्संग करते हैं, विचार भी करते हैं, परन्तु उन पुरुषों का भी ध्यान नहीं जाता कि इतने अनर्थ का कारण क्या है? व्यवहार में, परमार्थ में, खाने-पीने, लेन-देन में सब जगह राग बहुत बड़ी बाधा है। यह हट जाय तो आपका व्यवहार भी बड़ा सुगम और सरल हो जाय। मीठा हो जाय। परमार्थ और व्यवहार में भी उन्नति हो जाय।

विशेष बात यह है कि आसक्ति और राग खराब हैं। सत्संग की बातें सुन लोगे, याद कर लोगे, पर राग के त्याग के बिना उन्नति नहीं होगी। तो प्रश्न आपने किया कि मन की चंचलता कैसे दूर हो? पर मूल प्रश्न यह होना चाहिए कि राग और प्रियता का विनाश कैसे हो? भगवान ने गीता में इस राग को पाँच जगह बताया है।

"इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ"।

(गीता ३/३४)

तो स्वयं में, बुद्धि में, मन में, इन्द्रियों में और पदार्थों में— यह पाँच जगह राग बैठा है। पाँच जगह में भी गहरी रीति से देखा जाय तो मालूम होगा कि "स्वयं" में जो राग है, वही शेष चार में स्थित है। मूल में यह राग "स्वय" में स्थित है। अगर "स्वयं" का राग मिट जाय तो आप निहाल हो जाओगे। चित्त चाहे चंचल हो, परन्तु राग के स्थान पर भगवान में प्रेम हो जाय तो राग का खाता ही उठ जायगा। भगवान में आकर्षण होते ही राग खत्म हो जायगा।

भगवान से प्रेम हो, इसकी बड़ी महिमा है। इसकी महिमा ज्ञान और मोक्ष से भी अधिक कहें तो अत्युक्ति नहीं। इस प्रेम की बड़ी अलौकिक महिमा हैं। इससे बढ़कर कोई तत्त्व है ही नहीं। ज्ञान से भी प्रेम बढ़ कर है। उस प्रेम के समान दूसरा कुछ नहीं है। भगवान में प्रेम हो जाय तो सब ठीक हो जाय।

वह प्रेम कैसे हो ? संसार से राग हटने से भगवान में प्रेम हो जाय। राग कैसे हटे ? भगवान में प्रेम होने से। दोनों ही बातें हैं—राग हटाते जाओ और भगवान से प्रेम बढ़ाते जाओ। पहले क्या करें ? भगवान में प्रेम बढ़ाओ। जैसे आजकल रामायण का पाठ हो रहा है। अगर मन लगाकर और अर्थ को समझकर पाठ किया जाय तो मन बहुत शुद्ध होता है। राग मिटता है। भगवान की कथा प्रेम से सुनने से भीतर का राग स्वतः ही मिटता है और प्रेम जागृत होता है। उसमें एक बड़ा विलक्षण रस भरा हुआ है। पाठ का साधारण अभ्यास करने से आदमी उकता जाता है, परन्तु जहाँ रस मिलने लगता है, वहाँ आदमी उकताता नहीं। तो इसमें एक विलक्षण रस भरा है—प्रेम।

आप करके देखो। उसमें मन लगाओ। भक्तों के चरित्र पढ़ो, उससे बड़ा लाभ होता है, क्योंकि वह हृदय में प्रवेश करता है। जब प्रेम प्रवेश करेगा तो राग मिटेगा, कामना मिटेगी। उनके मिटने से निहाल हो जाओगे। यह विचारपूर्वक भी मिटता है, पर विचार से भी विशेष काम देता है प्रेम।

प्रेम कैसे हो? जो संत, ईश्वर भक्त जीवन मुक्त हो गये हैं, उनकी कथायें सदा मन को शुद्ध करने के लिये हैं। मन की शुद्धि को आवश्यकता बहुत ज्यादा है। मन की चंचलता की अपेक्षा अशुद्धि मिटाने की बहुत ज्यादा जरूरत है। मन शुद्ध हो जायगा तो चंचलता मिटना बहुत सुगम हो जायगा। निर्मल होने पर मन को चाहे कहीं पर लगा दो।

"कपट, छल, छिद्र" भगवान को सुहाते नहीं। परन्तु इससे आप डरते ही नहीं। झूठ बोलने से, कपट करने से, धोखा देने से– इससे तो वाज आते ही नहीं। इसको तो जान-जान कर करते हो। तो मन कैसे लगे? बीमारी तो तुम बढ़ा रहे हो, अपनी तरफ से बना रहे हो। तो आप ख्याल करो। इसमें जितनी आसक्ति है, प्रियता है, वह बहुत जबर्दस्त है। विचार करके देखो। आसक्ति बहुत गहरी बैठी हुई है। पदार्थों का महत्व बहुत भीतर में बैठा हुआ है। यह बड़ा भारी बाधक है। इसे दूर करने के लिये सत्संग और सत्शास्त्रों के अध्ययन से बहुत आश्चर्यजनक लाभ होता है।

मन कैसे स्थिर हो? तो मन को स्थिर करने के लिये बहुत सरल युक्ति बताता हूँ। आप मन से भगवान का नाम लें, और मन से ही गणना रखें। राम राम राम—ऐसे राम का नाम लें। एक राम, दो राम, तीन राम, चार राम, पाँच राम। न तो एक दो तीन बोलें, न अंगुलियों पर रखें, न

माला पर रखें। मन से ही तो नाम लें, और मन से ही गणना करें। करके देखो। मन लगे बिना यह होगा नहीं, और होगा तो मन लग ही जायगा।

एकदम सरल युक्ति है। तो मन से ही तो नाम लो, मन से ही गिनती करो और फिर तीसरी बार देखो तो उसको लिखा हुआ देखो। "राम" ऐसा सुनहरा चमकता हुआ नाम लिखा हुआ दीखे। ऐसा करने से मन कहीं जायगा नहीं और जायगा तो यह क्रिया होगी नहीं। इतनी पक्की बात है। कोई भाई करके देख लो। सुगमता से मन लग जायगा। कठिनता पड़ेगी तो यह क्रम छूट जायगा। तो न नाम ले सकोगे, न गणना कर सकोगे, न देख सकोगे। मन की आँखों से देखो, मन के कानों से सुनों, मन की जबान से लो। इससे मन स्थिर हो जायगा।

दूसरा उपाय यह है कि जबान से आप एक नाम लो, और मन से दूसरा। जैसे नाम जपो—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।। ऐसा कहते रहो। भीतर राम राम राम कहकर मन लगाते रहो। देखो मन लगता है या नहीं। ऐसा सम्भव है तभी बताता हूँ। असम्भव इस वास्ते है कि मन आपके काबू में नहीं है। मन लगाओ, इससे मन लग जायगा।

तीसरा उपाय बतावें। अगर मन लगाना है तो मन से कीर्तन करो। यह सरल है। इसमें मन थोड़ा लगता है और थोड़ा भागता भी। परन्तु लगेगा। मन से ही रागनी में गाओ। मन लग जायगा। जबान से मत बोलो। कंठ से कीर्तन मत

करो। मन से ही कीर्तन करो और मन की रागनी से भगवान् का नाम जपो।

पहले राग को मिटाना बहुत आवश्यक है और राग मिटता है सेवा करने से। उत्पन्न और नष्ट होने वाली वस्तुओं के द्वारा किसी तरह से सेवा हो जाय, यह भाव रखना चाहिये। पारमार्थिक मार्ग में, अविनाशी में, भगवान की कथा में अगर राग हो जाय तो प्रेम हो जायगा। भगवान् में, भगवान् के नाम में, गुणों में, लीला में आसक्ति हो जाय तो बड़ा लाभ होता है। अपने स्वार्थ और अभिमान का त्याग करके सेवा करें तो भी राग मिट जाता है।

मनुष्य पाप नहीं करना चाहता, फिर क्यों करता है। संसार से सुख लेने व संग्रह करने की कामना ही इसका कारण है।

× × ×

संसार के लोग आपके प्रति ठीक व्यवहार नहीं करते और आप ठीक करें तो दुगुना लाभ होगा, यह बड़ी भारी तपस्या है।

× × ×

भगवान् से प्रेम होगा तो संसार से द्वेष नहीं होगा। प्रेम में द्वेष नहीं होता, राग में द्वेष होता है। राग, प्रियता और आसक्ति यह अनर्थ का हेतु हैं।

× × ×

बुराई नहीं करने का निर्णय लोगे तो बुराई नहीं होगी, होगी तो दीखने लगेगी। उसे छोड़ते जाओ, एकदम निर्मलता आ जायगी।

: श्री हरि :

भगवान् में मन कैसे लगे

आप जो सम्बन्ध भगवान् के साथ मान लें, भगवान् भी वही सम्बन्ध मानने को तैयार हैं। आपका भाव सरलता से जिस प्रकार आवे, वही भाव ले लो।

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुञ्ज-हारी ॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहीं, आरतिहर तोसो ॥

ऐसे ही तुलसीदास जी आगे कहते हैं—

तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै।
ज्यों-त्यों तुलसो कृपालु ! चरन-सरन पावै ॥

ऐसे मान लो। भगवान् के प्रति भाव बदल लो। भगवान् ही मान लो। अपने प्यारे मान लो, जो भाव प्यारा लगे उनके साथ वही मान लो। यहाँ कई वर्षों पहले व्याख्यान करते हुए एक भाई ने प्रश्न किया:—मुझे तो मां का नाम प्यारा लगता है। प्रत्येक का ही ऐसा भाव होता है कि मां अच्छी लगती है। पालन करने वाली होती है मां। बूढ़े हो जायं तब तक मां याद आती है। मां का स्नेह होता है। स्नेह का प्रभाव ज्यादा हो जाता है। तो, हम भगवान् को मां कह कर पुकारें। मेरे से पूछा था एक सज्जन ने—भगवान् को हम मां कहें क्या ? (अथवा कह कर पुकार सकते हैं क्या ?)। भगवान् में स्त्री-पुरुष का विल्कुल भेद है ही नहीं। मां कहो। मां रूप में आ जायें भगवान्। प्रबोध-सुधाकर पुस्तक में श्री शंकराचार्य जी

महाराज (वेदान्त के आचार्य) ने, 'मातः कृष्णाः विधान' लिखा है। कृष्ण भगवान् को मां कह कर पुकारते हैं।

मां कह कर पुकारो। मां नाम से यदि स्नेह जागृत हो, मन लगता हो। भगवान् को मां कहो। अपना क्या है? पिता कहो। भाई कहो। जो नाम प्यारा लगे, जो सम्बन्ध प्यारा लगे।

ऐसा नहीं मान सको तो राधा जी को मां बना लो, आपके बह्म हो तो। नहीं तो कृष्ण हैं ही ज्यों के त्यों, मां है मेरी।

पहले आरम्भ-आरम्भ में ही सम्बन्ध जोड़ने में मन जाता है। मैंने कहा न, उद्देश्य एक बनालें। लक्ष्य एक बना लें। बस, फिर बाद में जगह-जगह मन नहीं जायेगा, फिर एक में ही मन रहेगा। जैसे लड़का हो या लड़की। आप उनका सम्बन्ध करते हो, लड़के का सम्बन्ध करते हो तो अनेक लड़कियों की बातें करो तो छोरा सुनेगा। लड़की का सम्बन्ध आप करते हो, अपनी स्त्री से बातें करते हो, देखो वहां ऐसा लड़का है, इतना पढ़ा-लिखा है। इस प्रकार की बातें करोगे-तो लड़की सुनेगी। ऐसी बातें लड़की कब तक सुनती है? जब तक उसका सम्बन्ध पक्का नहीं हो जाता। आप सम्बन्ध पक्का कर दें, अमुक के साथ बात पक्की हुई। उसके बाद (सम्बन्ध पक्का होने के बाद) छोरी केवल उसकी ही बात सुनेगी। कोई बात करोगे तो सुनेगी। दूसरे की बात इस प्रकार से नहीं सुनेगी। सुनेगी तो परवाह नहीं करेगी। ऐसे ही छोरा। यदि किसी के साथ सम्बन्ध पक्का हो गया तो छोरा सम्बन्ध वाली छोरी की ही बात सुनेगा। सुनेगा लड़का भी। देखेगा कि कैसी योग्यता है। कैसी बात है। छोरी छिप-छिप कर सुनती है। यह क्या

है ? सम्बन्ध हो गया न अब । सम्बन्ध न होता, तो नहीं सुनती । बहुत सी बातें होती हैं, नहीं सुनते । तो हम उनकी बातें क्यों नहीं सुनते हैं, क्योंकि सम्बन्ध जोड़ा नहीं । जब सम्बन्ध भगवान् के साथ जोड़ लेंगे तो उनकी बातें सुनेंगे । उनका साथ पकड़ना है । बाद में तरह-तरह की बातें कौन सुनेगा ? बताओ ! सुने तो असर नहीं होगा । उसी रीति से दूसरी बातें नहीं सुनते जिस रीति से लड़की दूसरे लड़कों की बातें नहीं सुनती । केवल सम्बन्ध वाले लड़के की बात सुनती है । देखा नहीं, पहले सुना नहीं । बस मां–बाप ने सम्बन्ध कर दिया कि मैंने अमुक को लड़की दी । इसी प्रकार भगवान् से सम्बन्ध जोड़ लेना है । हमें तो भगवत्प्राप्ति करना है फिर भगवान् की बात अच्छी लगेगी। स्वत: ही, स्वाभाविक ही । फिर मन और कहीं क्यों जायेगा । कहाँ जायेगा ? हमें मतलब ही नहीं है दूसरे से भाई ।—

हमें क्या काम दुनिया से हमें श्रीकृष्ण प्यारे हैं ।
यशोदा नन्द के नन्दन मेरी आंखों के तारे हैं ।।

हमें क्या मतलब, दुनिया से क्या लेना-देना । न लेना है, न देना है । हमारे तो एक भगवान हैं और वह हमारे हैं ।

भगवान् के गुण सुनें, उनके चरित्र सुनें, उनकी महिमा सुनें । श्रुति–परायण होवे । सुनने से बड़ा लाभ होता है । भक्तों के चरित्रों से बड़ा लाभ होता है । वह भी एक बढ़िया उपाय है । दिन में घन्टा दो घन्टा आप बैठ जाओ, दिन में हमारा समय है । कमरे में बैठ जाओ । दरवाजा कर दो बन्द । भक्तों के चरित्र पढ़ो । जिनको पढ़ते–प्रकाश वहां हो जाय । भक्तों के चरित्र पढ़ो । जिनको पढ़ते–पढ़ते गद्‌गद् हो जाय और प्रियता आवे । उस समय पुस्तक को छोड़ दो । नाम-जप है, कीर्तन है, शुरू कर दो । भगवान् का चिन्तन–भजन शुरू कर दो । जब मन फिर इधर-उधर जावे

और वैसी बात न रहे, फिर एक पन्ना पीछे से पढ़ो। फिर पढ़ते पढ़ते भाव आ जावे फिर छोड़ दो वहां। पुस्तक पढ़ना या पूरा करना है, यह मतलब नहीं। मन लगाना है। बस, वहाँ लगा दिया। उसके बाद फिर नाम-जप करते रहो। कीर्तन करते रहो। प्रार्थना करते रहो। बातें (प्रभु से) करते रहो। भगवान् की बातें करते रहो मन में। हमारा मन नहीं लगता महाराज! में क्या करूं? आप कब दर्शन दोगे? आपके चरणों में कब प्रेम होगा? ऐसे एक पुस्तक निकली है गीता-प्रेस से "ध्यानावस्था में प्रभु से वार्तालाप" उस पुस्तक के अनुसार करो, बड़ा लाभ होगा। चलते-फिरते भगवान् से बात करना शुरु कर दो। मन से प्रश्न पूछो तो मन से उत्तर मिले। जो स्फुर्णा हो जाय-भगवान् ने उत्तर दिया। फिर भगवान् से पूछो-सुगमता से मन लग जायेगा। भक्तों के चरित्र बताये। इसी प्रकार विनय-पत्रिका ले ली अथवा कोई स्तुति ले ली। स्तुति करते-करते, मन लग जाय। चिन्तन करना, नाम-जप करना शुरू कर दो। जब छूट जाय तो फिर पढ़ना शुरु कर दो। इन बातों में से कोई एक बात अपना कर आप देखें। फिर पूछो—फिर चर्चा करें आप से। ऐसे तो यह युक्ति-संगत जँचती है। बात यह ठीक है। ऐसे हो सकता है कि नहीं। यदि सम्भव है तो करके देखो। करके देखने से पता लगता है कि कहाँ-कहाँ विघ्न आते हैं। कहां बाधा आती है? क्यों बाधा आती है? इन बातों का पता लगेगा।

यदि मन अधिक चंचल हो तो दो नाम-जप करें, एक तो मुख से करे राम, राम, राम,। दूसरे भीतर से हरे राम, हरे राम......। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण........। षोडश-मन्त्र। ऊपर से राम राम करे, भीतर से हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे।

हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। जप करता रहे, थोड़ी-२ देर बाद भगवान् से कहता रहे कि आपके चरणों में मन नहीं लगता। हे भगवान् मन नहीं लगता। नमस्कार करे। कहता रहे। यह बड़ी युक्ति है, सरल बात है। नाम-जप करता रहे, आधा मिनट हुआ, एक मिनट हुआ। कह दिया महाराज। मन नहीं लगता। भगवान् से कह दो। कहना-प्रार्थना हो गई। भगवान् की याद आ गई। नाम जप हो रहा है। पांच-सात दफे माला में कह देवें। भगवान् से कह दें। महाराज, मन नहीं लगता। हे नाथ! मैं भूल जाता हूं। हे नाथ! मन नहीं लगता हे नाथ! मैं भूल जाता हूं। हे नाथ! मन नहीं लगता। नमस्कार करते रहो, कहते रहो।...... षोड़ष-मन्त्र ब्रह्मा जी का बताया हुआ है; यह जपता रहे और प्रार्थना करता रहे। हे नाथ! मन नहीं लगता। हे भगवान् क्या करूं? महाराज! आपके चरणों में मन नहीं लगता, कहते रहो। उनकी कृपा से लगेगा।

राम-राम-राम-राम-राम।

जो व्यवहार हमें अपने लिए अच्छा नहीं लगता वह दूसरों के प्रति मत करो। चार बातों पर ध्यान दें-

किसी का कभी बुरा नहीं करेंगे।
किसी का कभी बुरा नहीं सोचेंगे।
किसी का कभी बुरा नहीं सुनेंगे।
किसी का कभी बुरा नहीं देखेंगे।

यह कर्मयोग की बड़ी सीधी युक्ति है।

श्री हरि :

निरन्तर भगवत्स्मृति कैसे हो ?

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् ने कहा है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध च। (गीता ८/७)
इसलिये सब समय में तू निरन्तर मेरा ही स्मरण कर और युद्ध (कर्त्तव्य कर्म) भी कर। भगवान् का स्मरण सब समय में हो सकता है, किन्तु युद्ध सभी समय में नहीं हो सकता, अर्जुन के सम्मुख युद्ध-रूपी कर्त्तव्य ही था। अन्य लोगों के सामने अपने-अपने घरों के काम है। युद्ध की तरह घरों के काम-धन्धे भी सभी समय में नहीं हो सकते। इस प्रकार भगवान् का स्मरण करते हुए काम करना, काम करते हुए भगवान् का स्मरण करना एवम् भगवान् का ही काम करना। ये तीन विकल्प साधक के सम्मुख उपस्थित होते हैं। पहले विकल्प में भगवत्स्मरण ही प्रमुख है। कार्य गौण है। दूसरे विकल्प में कार्य ही प्रमुख है और भगवत्स्मरण गौण है। और तीसरे विकल्प में भगवान् के प्रति अनन्य भाव है।

प्रायः लोग काम करते हुए भगवान् को भूल जाते हैं। इसमें स्वयं की असावधानी एक प्रमुख कारण है ही, परन्तु साथ में एक भारी भूल भी है। यह एक सिद्धान्त है कि जिसके प्रति ममता होती है, उसका स्वतः ही स्मरण होता है। लोग काम-धन्धों को अपना मानते हैं, उनके प्रति ममता रखते हैं, अतः उन्हें काम-धन्धे ही याद आते हैं, भगवान्

नहीं । भगवान् याद आते भी हैं, तो कुछ समय पश्चात् उन्हें पुनः भूल जाते हैं । अतः यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये कि हमें घर का काम करना ही नहीं है । काम तो भगवान् का ही करना है । "अंजन कहा आँख जेहिं फूटे" जिस अंजन से आँख फूट जाय, वह अंजन कैसा ? उससे हमें क्या मतलब ? घर का काम करते हुए भगवान् को भूल जायें तो ऐसे काम से क्या लेना ? अतः साधक को यह मान लेना चाहिये कि घर हमारा नहीं , काम हमारा नहीं एवम् हम भी हमारे नहीं । घर भी भगवान् का, काम भी भगवान् का एवं हम भी भगवान् के हैं । भगवान् की शक्ति से ही भगवान् की प्रसन्नता के लिये हम भगवान् का ही काम कर रहे हैं— इस प्रकार की दृढ़ भावना से भगवान् के प्रति ममत्व पैदा हो जाएगा और फिर भगवान् का स्मरण स्वतः ही होने लगेगा । स्मरण के लिये प्रयास की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी । किन्तु जब तक घर आदि को अपना मानते रहेंगे, तब तक स्मरण में भूल होगी ही ।

जैसे हम किसी धर्मशाला में ठहरते हैं तो यह बात जँच जाती है कि यह धर्मशाला हमारी नहीं है । इसी प्रकार घर में रहते हुए यह बात जँच जानी चाहिए कि यह घर हमारा नहीं है, यहाँ तो थोड़े समय के लिये हम रहने आये हैं । इस बात को बहुत ही दृढ़तापूर्वक पकड़ लेना चाहिये कि यह घर मेरा नहीं, धनादि पदार्थ मेरे नहीं, परिवार मेरा नहीं, शरीर मेरा नहीं । ये तो थोड़े समय के लिये मिले हुए हैं । समय पूरा होते ही इनसे वियोग हो जायेगा । यदि ये मेरे होते तो सदा मेरे साथ रहते; किन्तु इन पर न तो कोई अधिकार ही चलता है, न इनमें हम इच्छानुसार परिवर्तन ही कर सकते हैं और न इनको मरने, नष्ट होने से बचा ही

सकते हैं। अतः ये पदार्थ आदि मेरे कैसे हो गये ? किसी भी युक्ति-प्रयुक्ति से इनके साथ "मेरापन" सिद्ध नहीं होता। अतः यह मेरे नहीं हैं, नहीं है, नहीं हैं।

मेरे तो एकमात्र भगवान् ही हैं; क्योंकि भगवान् पहले भी मेरे थे; अब भी हैं एवं आगे भी रहेंगे। सांसारिक पदार्थ पहले भी मेरे नहीं थे, आगे रहेंगे नहीं एवं वर्तमान में भी इनसे निरन्तर ही वियोग हो रहा है। संसार के साथ कभी संयोग है ही नहीं और भगवान् के साथ कभी वियोग है ही नहीं।

भगवत्प्राप्ति की इच्छा कभी भी मिटती नहीं। मनुष्य चाहे इस बात को माने या न जाने; किन्तु उसके हृदय में यह कामना अवश्य रहती है कि मैं सदा के लिए पूर्ण सुखी हो जाऊं, सभी बन्धनों से मुक्त हो जाऊं, मेरे पास कभी दुख न आये। यही भगवत्प्राप्ति की इच्छा है। यह इच्छा अवश्य-मेव पूरी होती है, क्योंकि यह जीव की वास्तविक एवं सच्ची इच्छा है।

संसार की इच्छा बिल्कुल नकली है। यह इच्छा बनती और मिटती रहती है, किन्तु कभी पूरी नहीं होती। लोगों ने मिथ्या धारणा कर रखी है कि संसार की इच्छा मिटती नहीं। परन्तु वास्तविक बात यह है यह इच्छा टिकती नहीं, बदलती रहती है। बचपन में कोई और इच्छा थी, जव.नी में कोई और हो जाती है एवं वृद्धावस्था में तो इच्छा का रूप ही बदल जाता है। संसार स्वयं परिवर्तनशील है। अतः संसार की इच्छा भी परिवर्तनशील ही है। शरीर भी परिवतनशील ही है। अतः संसार की इच्छा शरीर की ही इच्छा है, व्यक्ति की स्वयं की इच्छा नहीं है। स्वयं (जीव) अपरिवर्तनशील है,

परमात्मा भी अपरिवर्तनशील है एवम् परमात्मा की इच्छा भी अपरिवर्तनशील है। इसलिये परमात्म-प्राप्ति की इच्छा ही जीव की स्वयं की इच्छा है। सांसारिक पदाथ शरीर को ही प्राप्त हो सकते हैं। स्वयं (जीव) को नहीं। स्वयं (जीव) को तो परमात्मा ही प्राप्त हो सकते हैं; क्योंकि संसार, सांसारिक पदार्थ एवं शरीर की जातीय एकता है। इसी प्रकार परमात्मा एवं जीव की जातीय एकता है, सम्बन्ध सजातीय का ही होता है, विजातीय का नहीं। संसार के अंश को संसार की इच्छा है एवं परमात्मा के अंश को परमात्मा की इच्छा है।

संसार का काम, घर-परिवार का काम भी, शरीर, मन, इन्द्रियाँ आदि का ही काम है, हमारा काम नहीं है। हमारा काम तो भगवान् का भजन करना एवं भगवान् और उनके तत्त्व को प्राप्त करने का ही है। हमें एकमात्र भगवान् की ही आवश्यकता है एवं भगवत्प्राप्ति की इच्छा ही हमारी वास्तविक इच्छा है। संसार का काम तो पराया काम है।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता कि जीव का परमात्मा के साथ ही स्वतः सिद्ध नित्य सम्बन्ध है। परन्तु अज्ञानवश संसार को एव संसार के काम को अपना मान लेने के कारण ही जीव कार्य करते समय भगवान् को भूल जाता है। जीव यदि दृढ़ता पूर्वक भगवान् के साथ अपने नित्य, सत्य शाश्वत सम्बन्ध को स्वीकार कर केवल उन्हें अपना मान ले एवम् भगवत्प्राप्ति के अतिरिक्त किसी भी कार्य को अपना कार्य न मानें तो वह भगवान् को कभी भूल ही नहीं सकता। संसार की इच्छा करने एवं संसार के साथ सम्बन्ध मानने के कारण ही भगवत्प्राप्ति में भूल होती है। अतः अपने वास्तविक सम्बन्ध एवं कार्य को पहिचानना चाहिए।

प्रश्न : निरन्तर भगवत् स्मरण के लिए नाम जप की आवश्यकता है क्या ?

उत्तर : कलियुग में नाम सर्वोपरि साधन है। नाम जप से सब काम स्वतः ही ठीक बन जाते हैं। "**नामु राम को कलपतरू कलि कल्यान निवासु ।।**" (मानस १/२६) रामजी का नाम रूपी कल्पतरु कलियुग में बहुत कल्याण करता है। इस कल्पतरु से जो चाहे सो ले लो। निरन्तर नाम जप करने से इसमें रस आने लगता है। मिठाई खाने वाला ही रस को जानता है। ऐसे ही नाम को लेने वाला ही नाम के रस को जान सकता है।

नाम जप से अत्यधिक लाभ होता है। नाम जप से विषय-वासना दूर होती है; पाप नष्ट होते हैं; विकार दूर होते हैं; शान्ति मिलती है, और भक्ति बढ़ती है। नाम जप से असम्भव भी सम्भव हो सकता है। जब मन में चिन्ता आवे तो आधा घंटा, एक घंटा नाम जपो, चिन्ता मिट जायगी। नाम जप करने वाले सज्जन नाम मय हो जाते हैं।

नाम जप तो असली धन है जो साथ जाता है। इसलिये कहा है। "धनवन्ता सोई जानिये जाके राम नाम धन होय।" नाम की कीमत कोई आँक नहीं सकता। यह अमूल्य रत्न है। "पायो री मैंने राम रतन धन पायो।" नाम को सगुण और निर्गुण से भी बड़ा बताया है।

"**कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई ।।**" (मानस १/२५/४) नाम के गुण तो स्वयं भगवान् भी गाना चाहें तो नहीं गा सकते। नाम की महिमा अपार है, असीम है और अनन्त है।

प्रश्न : नाम जप की खास विधि क्या है ?

उत्तर : भगवान् के स्वरूप का ध्यान करते हुए, अर्थ को समझते हुए, भगवान् के होकर नाम का जप करें। नाम जप गुप्त रूप से और निष्काम भाव से करें। नाम जप निरन्तर करते रहें। नाम को भूल न जायें, इसके लिए एक उपाय है। मन ही मन भगवान को प्रणाम करके उनसे प्रार्थना करें "हे नाथ ! मैं आपको भूलूँ नहीं, हे प्रभो ! आपको मैं भूलूँ नहीं। ऐसा थोड़ी थोड़ी देर में कहते रहें।

एक बात और है, उस पर ध्यान दें। जब कभी आपको भगवान् अचानक याद आ जायें, या भगवान् का नाम अचानक याद आ जाय उस समय समझो कि भगवान् मेरे को याद करते हैं। ऐसा समझ कर प्रसन्न हो जाओ कि मैं निहाल हो गया; मेरे को भगवान् ने याद कर लिया। अब और काम पीछे करेंगे—उस समय नाम जप व कीर्तन में लग जाओ। ऐसा करने से भक्ति बहुत ज्यादा बढ़ती है।

माला से जप करना लाभदायक है। भगवान् को याद करने के लिये माला एक शस्त्र है। माला फेरनी चाहिये। जितना नियम है उतना जप माला से पूरा हो जाता है। उसमें कमी न आ जाय इसलिये माला की आवश्यकता है। बिना माला के अगर निरन्तर जप होता है तो माला की कोई जरूरत नहीं है।

———

श्री हरि :

जीवन की चेतावनी

गीताजी में दो बातें भगवान् ने अपने मन से विशेषता से कही हैं—

१. साधन के विषय में। २. अन्तकाल के विषय में। मनुष्य का जीवन भगवन्मय होना चाहिए, भगवान् की साधना में लगना चाहिए और अन्त में भगवान् की स्मृति होनी चाहिए। इन दो विषयों में भगवान् ने जितने श्लोक कहे हैं और जितना विवेचन किया है उतना और किसी विषय में नहीं किया। और अन्त में कहते हैं—"मामेकं शरणं व्रज" तू मेरी शरण हो जा, मैं सम्पूर्ण पापों से मुक्ति कर दूंगा, तू चिन्ता मत कर।

अब सज्जनो ध्यान देकर सुनें। यह संसार जो अपना दीखता है यह अपने साथ नहीं रहेगा, नहीं रहेगा।

थे बड़े-बड़े महाराजे
जिनके बजे रात दिन बाजे।
वे भी बने काल के खाजे॥

मिले नहीं बारम्बार शरीर, ऊमर क्यों गफलत में खोते हो? संसार से क्या ले लोगे आप? धन ले लोगे, सुख ले लोगे? ले कुछ सकोगे नहीं। धोखा होगा, धोखा। ससार से किसी एक को भी बता दो पूर्ण सुख मिला है क्या? मिलेगा भी नहीं क्योंकि ये तो नाशवान् है। परन्तु भगवान् तो हैं अविनाशी। ये शरीर, संसार सभी यहीं रहने वाले हैं। शरीर को भी

दूसरे लोग उठायेंगे। यह पहले से विचार करना होगा, सोचना होगा कि क्या करना चाहिए। जैसे कोई मनुष्य घर से निकल जाता है और पता ही नहीं कि कहां जाना है तो क्या दशा होती है? पूछे किसी से कि मार्ग बतादो, तो बताने वाला पूछे कि कहां का? तो कहे कि कहीं का बता दो। तो वो पागल समझा जायगा। एक लक्ष्य तो होना चाहिए। भाइयो ध्यान देना। हमारी जीवन-यात्रा तो हमारे जन्म के समय से ही चल पड़ी। जीवन प्रतिक्षरण खत्म हो रहा है और हमें इस जीवन में क्या करना है, यह पता नहीं। हममें से बहुत से बहिन-भाइयों को तो पता ही नहीं कि हमें किधर जाना है, हमारे जीवन का क्या लक्ष्य है। मैंने पूछ कर देखा है कि बताओ हम क्या चाहते हैं? तो उनके पास कोई निर्णय नहीं है। कभी कुछ चाहते हैं, कभी कुछ चाहते हैं। यहाँ की सब चीजें तो छूटने वाली हैं, तो प्रभु को याद करो जो नित्य निरन्तर रहने वाले हैं।

सज्जनो चेतो। दूसरों को धोखा दे दें, हम कुछ ले लें, महान् मुश्किल होगी, कुछ नहीं मिलेगा। सब कुछ यहीं रहेगा और यमराज के दूत आ जायेंगे। वह दिन कभी भी आ सकता है; पता नहीं कब आ जाय। उसके आने में कोई सन्देह नहीं है। आप हम सब कहां बैठे हैं, पता है? मृत्यु लोक में हैं, मरने वालों के लोक में हैं, यहाँ रहने वाला कोई नहीं, सब मरने ही मरने वाले हैं। निश्चिन्त कैसे बैठे हो? जो काम करना है सो कर लो अब नहीं किया तो फिर कब करोगे? छोटे-२ बालक होते हैं, वे भी यह सोचते हैं कि बड़े होकर यह करेंगे। इसी प्रकार हम सोचते हैं कि बड़े होकर यह करेंगे। बाल सफेद होने लगे तो क्या करोगे? अब तो मरोगे, बस। शरीर प्रतिक्षरण जा रहा है, इसमें सन्देह नहीं

है किंचितमात्र भी। जन्म-दिन पर खुशी मनाते हैं, अरे रोने का दिन है कि एक वर्ष बीत गया परन्तु इसमें किया क्या ? १२ महीने की उम्र को जिसमें भगवान् की प्राप्ति हो सकती थी, व्यर्थ गवां दिया। विचार करने की बात है। अगाड़ी सावधान होने की बात है कि अब जो समय बीत गया, वह तो बीत गया, अब नहीं बीतने देंगे। उस प्रभु को याद करो।

"अंतहु तोहि तजेंगे पामर, तू न तजै अब ही ते"।

ये तो सब छूटने वाले हैं परन्तु काम पड़ने पर परमात्मा ही साथ रहने वाले हैं। वे प्रभु ही हमारे हैं, सज्जनो, और कोई हमारा नहीं है। अतः ,'हे नाथ, हे नाथ"। पुकारो। वे प्रभु प्रत्येक समय में हैं, तो अभी भी हैं, प्रत्येक स्थान पर हैं तो यहाँ भी हैं और सबके हैं तो हमारे भी हैं, सबमें हैं तो हमारे में भी हैं, वे स्वयं कहते हैं—"सुहृदं सर्वभूतानां" प्राणीमात्र के सुहृद—ऐसे परमात्मा के रहते हुए हमारी दुर्दशा हो तो फिर क्या कहें ? उसके रहते हुए हम दुःख पावें, कष्ट उठावें। तो कारण क्या है ? उसके विमुख होना। नाशवान् पदार्थों के पीछे पड़ना कि वे मिल जायें, भोग भोग लें, मान, सम्मान मिल जाय, मिलेगा कुछ नहीं, धोखा होगा धोखा। सब ज्यों का त्यों रह जायेगा, साथ कुछ नहीं जावेगा। अतः उपकार करो। साथ क्या चलेगा ? साथ चलेगा—स्वभाव। सेवा करने वाला सब जगह सेवा करेगा और महान् आनन्द लूट लेगा। असली पूंजी आपकी है, आपका स्वभाव। एक दिन के लिए भी कहीं जाते हैं तो सोचते हैं कि अमुक जगह ठहरना होगा, अमुक सवारी मिलेगी। परन्तु इस संसार को एक दिन छोड़ना है, इसे छोड़ कर जाना पड़ेगा जरूर, तो इसका प्रबन्ध किया है कि नहीं; यह प्रत्येक भाई बहिन को स्वयं को

सोचना होगा। एक क्षरण का भी पता नहीं, हार्टफेल हो जाता है तो चलते फिरते मर जाता है। फिर हम क्या फौलाद के बने हुए हैं। इस वास्ते स्वभाव को शुद्ध बनाओ। हर एक का उपकार करो, हित करो। प्रभु को याद करो। जितने सन्त महात्मा हुए हैं वे सब भगवान् को याद करने से ही संत महात्मा बने हैं। भगवान् के नाम बिना सब खाली है, खाली। अतः प्रत्येक समय, काम-धन्धा करते हुए भी, न करते हुए भी भगवान् को पुकारते रहो। उठते, बैठते, सोते-जागते, उससे काम पड़ने वाला है, उसको याद करते रहो। प्रत्येक समय नाम-जप करते रहो कहते रहो—राम राम राम राम राम।

नाम जप करो। अन्त में नाम काम आवेगा। धन, सम्पत्ति, परिवार, मकान कुछ काम नहीं आवेंगे। अभी तक जिन कामों को करते हुए, आपको सत्संग, भजन, ध्यान, स्वाध्याय, पाठ जप आदि के लिए समय नहीं मिलता है अन्त में क्या होगा? हाय! हमने कुछ नहीं किया। यह सारा काम-धन्धा कुछ नहीं किया में भर्ती होने वाला है। मनुष्य कहता है कि सत्संग के लिये समय नहीं मिलता। राम-राम कितनी भारी भूल। बच्चा जन्मता है, तो बड़ा होगा कि नहीं होगा, इसमें सन्देह है, पढ़ेगा, नहीं पढ़ेगा इसमें सन्देह है, विवाह होगा, नहीं होगा, इसमें सन्देह है, परन्तु मरेगा, नहीं मरेगा, इसमें सन्देह नहीं है। मरना तो पड़ेगा ही। परन्तु जिन कामों में सन्देह है उन्हें तो तत्परता से कर रहा है, परन्तु जिस काम में सन्देह नहीं, जाना तो पड़ेगा जरूर, उसके लिये कोई तैयारी ही नहीं। बड़े आश्चर्य की बात है। रह तो हम सकते नहीं। यह बड़ी भारी भूल है। अतः सावधान हो जाओ।

मैं एक सच्ची बात कहता हूँ । वह है कि सिवाय भगवान् के अपना कोई नहीं है । मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, श्वास आदि कोई आपके नहीं । परन्तु प्रभु को आप अपना मान लें तो प्रभु छोड़ नहीं सकते आपको । यह सब चीजें, जिनके आप पीछे पड़े हैं, आपकी कोई नहीं मानने वाले हैं । जिस शरीर की आप सदा रक्षा करते हो, एक दिन रात्रि में भूल से कपड़ा अलग रह जाय तो जाड़ा लग जायेगा । यह ख्याल नहीं करता कि कितने दिन इसने रक्षा की, एक दिन मैं भी क्षमा कर दूँ, इतने वर्षों से अन्न जल दिया । दो दिन अन्न जल बन्द कर दो । क्या दशा होती है ? यह इतना कृतघ्न है कि दो दिन में ही पोल निकाल देता है । तो ऐसे कृतघ्न शरीर के तो बन गये गुलाम । और जो भगवान् याद करने मात्र से दौड़ते हैं उन भगवान् को याद ही नहीं करते । बिना याद किये भी उन भगवान् ने हमें विद्या, बुद्धि, ज्ञान, शरीर, जीवन आदि सभी दिये हैं और देते ही रहते हैं और इतने ढंग से देते हैं कि उनका दिया हुआ, अपना ही मालूम देता है । ऐसे परम सुहृद परमात्मा को भूल गये ।

"सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति" ।

(गीता ५।२९ (उत्तरार्द्ध))

परमात्मा पापी, दुराचारी, सज्जन आदि सभी के परम सुहृद हैं अतः उसको तो याद करो और संसार का काम करो । और संसार के काम से भी भगवान् को राजी करो । कैसे ? स्वार्थ का त्याग करके सेवा करो । सब भाई-बन्धुओं की, स्त्री, पुत्र की, सबकी सेवा करो, सबको सुख पहुँचाओ, भगवान् के नाते, यह सोचकर कि यह सब भगवान् के हैं । तो इससे भगवान् बड़े राजी होंगे कि यह मेरे बच्चों का पालन करने

वाला है। जैसे कोई एक बच्चा है जिसके माता-पिता नहीं, उसे एक माई घर ले जाती है और उसका पालन-पोषण करती है, तो लोग कहते हैं कि बड़ी दयालु माई है। अपने बच्चों का पालन तो सभी करते हैं, कुतिया भी अपने बच्चों का पालन करती है। अतः सबका हित करना है। चाहे तो जिनसे अपना कोई स्वार्थ न हो उनका हित करदो या जिनकी अपने सेवा करते हैं, उनसे अपना कोई सम्बन्ध न रखो। एक ही बात होगी। अतः स्वार्थ त्याग कर सबको सुख पहुँचाओ, सबका हित करो—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मां कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

किसी को दुःख न मिले, सबको आराम मिले, सबको सुख मिले। सज्जनो! ऐसा भाव करलो। यह मनुष्य जन्म का खास मौका है। स्वार्थ के लिए करना मनुष्यता नहीं है। कुत्ते आपस में खूब खेलते हैं परन्तु रोटी का टुकड़ा देखते ही लड़ाई हो जाती है। ऐसे ही यदि स्वार्थ के लिए हम लोग भी लड़ें तो हममें क्या अन्तर हुआ? तो यह भाव रखो कि सबका हित कैसे हो? "ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्व-भूतहिते रताः"। (गीता १२/४ उत्तरार्द्ध)। सबके हित में जो रत होते हैं वे परमात्मा को प्राप्त होते हैं। अतः सज्जनो संसार को अपना मानकर जो लाभ आपने उठाया है, वह तो उठा ही लिया, अब भगवान् को अपना मानकर देख लो। सबका हित हो, सबको आराम मिले, सबका कल्याण हो यह भाव रखो। सेवा जितनी कर सको, उतनी करो। परन्तु भाव में कमी न रखो। भाव भीतर का यह होना चाहिए कि सबके

हित में प्रीति हो तो उस भाव से स्वतः त्याग होगा। भावना

पहले होती है, क्रिया बाद में होती है। अतः सबके हित की भावना हो। जो भी बड़े-बड़े महात्मा हो गये, उनमें दूसरों के हित की भावना थी।

"उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई" ॥
(मानस ५/४०/४)

उनके साथ कोई मन्द करे तो भी वे तो भलाई करते ही रहते हैं। ऐसे ही सबका भला हो जाय, सबका कल्याण हो जाय, वह चिन्तन आपके मन में लग जाय, तो आपका उद्धार हो जायेगा। महापुरुषों के संग से, दर्शन से कल्याण हो जाता है। तो इसका कारण क्या है? कारण है कि एकान्त में रहते हुए भी उन महापुरुषों के चिन्ता रहती है कि सबका कल्याण कैसे हो जाय। उस लगन के कारण उनके दर्शन मात्र से संसार का हित होता है। उनको हवा मात्र से सबका कल्याण होता है।

एक और मार्मिक बात है कि जैसे परमात्मा सबका हित चाहते हैं उसी प्रकार जो व्यक्ति सबका हित चाहता है उसकी परमात्मा की शक्ति के साथ एकता हो जाती है और उसके द्वारा सबका हित होता है।

अतः सज्जनो, भाइयो, बहिनो सच्चे हृदय से सबका हित कैसे हो, सबका कल्याण कैसे हो, यह लगन लग जाय। माता-बहनें घरों में स्वयं कार्य करें और सेवा करें, दूसरों से करायें नहीं। यह शरीर थोड़े दिनों के लिये मिला है, फिर समाप्त होने वाला है। अतः थोड़े दिन डट कर सेवा कर लो। लाभ उठा लो। फिर यदि बीमार हो जायेगा तो दूसरे आदमी की इसे जरूरत पड़ेगी, इसे उठाने बैठाने के लिए भी। जिए तो यह क्या हो जावेगी अन्यथा खत्म हो जाओगे। यह सेवा

असली चीज है, असली, यह भगवान् को भी ख़रीदने वाली है। इसलिए सेवा करो, चीज वस्तु तो दूसरों को दो और काम धन्धा अपने आप करो। देखो आपस में प्रेम होता है कि नहीं। परिवार में झगड़ा क्यों होता है? इसलिए कि हम कहते हैं कि काम-धन्धा तो तू कर और चीज़ मैं लूं। तो लड़ाई होगी। आपस में प्रेम बढ़ाने का दूसरा उपाय है कि बड़ों के चरणों में प्रणाम करे। इससे आवागमन मिट जाता है। बड़ों के चरणों में नमस्कार करो। उनकी आज्ञा का पालन करो। उनकी सेवा करो। कितनी प्रसन्नता हो जायेगी। आपस में प्रेम बढ़ेगा। स्नेह बढ़ेगा। घर में आनन्द रहेगा। धर्म, सन्त, महात्मा, परिवार भगवान् सभी राजी हो जायेंगे। परन्तु यदि कोई गड़बड़ी करता है, खोटे रास्ते पर चलता है तो माता-पिता भी नाराज हो जायेंगे। अतः सेवा, उपकार करो और भगवान् को याद रखो। यह संसार सदा रहने का नहीं है, यहाँ सदा रहने के लिए नहीं आये हैं, थोड़े दिन रहना है। जैसे कुछ दिनों के लिए सत्संग में आये हैं, गीता भवन में, फिर यहाँ से चल देंगे, इसी प्रकार इस संसार से चल देना है अचानक, और पता है नहीं कि कब चल देना है। अतः सज्जनो समझदार वही है।

तुलसी सो नर चतुर है जो राम भजन लवलीन।
पर धन, पर मन हरण को वेश्या भी परवीण॥

भगवान् के भजन में जो लग गया है वह धन्य है। भगवान् के दरबार में भी उसका आदर है कि उसने मनुष्य जन्म सफल कर लिया। भगवान् ने कृपा करके मनुष्य जन्म दिया कि जिससे यह अपना कल्याण कर ले। परन्तु यदि मनुष्य अपना कल्याण नहीं करते तो वे भगवान् का एक प्रकार से

धोखा देते हैं। इस वास्ते ऐसा न हो जाय। हमें मनुष्य शरीर मिला, उत्तम कुल मिला, भगवान् की ओर चलने की रुचि मिली, सत्संग मिला, गीता, रामायण जैसे ग्रन्थ और भगवान् का नाम सुनने को मिला। अब क्या बाकी रहा? थोड़ा सा उद्योग अपनी तरफ से करो। हां में हां मिलाओ। इतने में कल्याण होता है। भगवान् की कृपा मान करके नाम का जाप करो. सेवा करो और रात दिन मस्त रहो कि हम तो अन्याय करते ही नहीं, किसी को दुःख देते ही नहीं, किसी को कष्ट पहुंचाते ही नहीं, तो फिर हमें दुःख किस बात का, चिन्ता किस बात की।

तन कर, मन कर, वचन कर, देत न काहू दुःख।
तुलसी पातक झड़त है, देखत उसके मुख।।

अतः आप कृपा करो कि अब से किसी को दुख नहीं दगे। मन से भी किसी का बुरा चिन्तन नहीं करगे। जिह्वा से ऐसी वाणी बोलेंगे जिससे किसी को कष्ट न पहुचे। कोई क्रिया ऐसी न करें जिससे किसी को कष्ट पहुँचे। सबको आराम पहुँचाएं, सेवा करें। ऐसे सम्पूर्ण प्राणियों के हित मात्र में आप लगे रहो, तो भगवान् की अनन्त शक्ति, अपार शक्ति आपके साथ है। तो ऐसा करते ही मनुष्य जीवन सफल हो जाय। कलियुग की श्रेष्ठ पुरुषों ने बड़ी महिमा गाई है क्योंकि इसमें कल्याण शीघ्र होता है।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास।।
(मानस ७/१०३)

बिना प्रयास के ही इस संसार-सागर से तर जाता है। ऐसा सुन्दर मौका हमें मिला है। अतः हम भगवान् के चरणों में

लग जायें। अपने भगवान् हैं, भगवान् के अलावा कोई हमारा नहीं, हम किसी के नहीं हैं। संसार में आये हैं तो केवल सेवा करने के लिए आये हैं। संसार से स्वार्थ मिलेगा ? सब सोचते हैं कि मैं अपना स्वार्थ सिद्ध कर लूँ, तो इससे स्वार्थ सिद्ध होगा नहीं। दूसरों की सेवा करो और जो प्रभु अपने हैं, उनको याद रखो। यह जीवन सेवा करने के लिए मिला है। अतः न्याययुक्त, शास्त्र की पद्धति के अनुसार सबकी सेवा करो।

उद्योग पर्व सें कथा आती है धृतराष्ट्र विदुर जी को बुलाते हैं और पूछते हैं कि मेरे को नींद नहीं आ रही है। तो विदुर जी ने कहा कि जो सच्चे आदमियों से वैर करेगा और उनको कष्ट देना चाहेगा, उसे नींद नहीं आयेगी। उसे अशान्ति रहेगी ही। पाण्डवों के साथ खराब व्यवहार करके शान्ति चाहते हो ? जिसका हृदय खराब होगा, उसे शांति नहीं मिलेगी। स्वार्थ सिद्ध करके जो यह सोचता है कि मैं अपना काम बना लूं तो वह काम बना नहीं रहा है, बिगाड़ रहा है। इस वास्ते यह जो स्वार्थ दीखता है, महान् पतन की बात है। अतः इस थोड़े से जीवन में जो सेवा अपने से बन सके, वह करें। चतुर वही है जो इस मनुष्य शरीर को पाकर अपना काम बना ले। सेवा में लग जाय, नाम जप में लग जाय। सबमें रहते हुए, सब की सेवा करते हुए, यदि यहां से चल दिये, तो अपना तो आनन्द हो गया, मौज हो गई। परन्तु यदि यह ताकते रहेंगे कि मैं सुख ले लूं तो सुख तो ले सकोगे नहीं, समय बर्बाद कर दोगे। अतः अभी से सच्चे हृदय से भगवान् की तरफ लग जायें। नाम जप कीर्तन करें, सेवा करें। कैसे आनन्द की बात है। यहाँ सदा रहना नहीं है,

नहीं है। यहाँ से जाना पड़ेगा–पड़ेगा। राजा, महाराजा, सेठ, धनी, गरीब, भाई, बहिन, पण्डित, मूर्ख, कोई भी हो, सबको यहाँ से जाना पड़ेगा।

कैसे निश्चिन्त होकर बैठे हो ? किसके भरोसे निर्भय बैठे हो ? भगवान् को याद करो। जो भगवान् के नाम का जप मन लगा कर कर रहा है वह मर जाये तो आनन्द, और जी जाये तो आनन्द। मरें तो भगवान् का स्मरण करते हुए मरें और जीवें तो भजन का संग्रह हो जावेगा, तो हम तो मालामाल हो गये। भजन है यह साथ में जाने वाला धन है। चोर इसे नहीं ले जा सकते, राजा इसे नहीं ले सकता। भाई-भाई के बँटवारे में यह नहीं जा सकता, यह सदा साथ रहने वाली सच्ची पूँजी है। ऐसी बढ़िया पूँजी है कि इससे भगवान् को खरीद लो।

एक कहानी है कि एक देश में राजा बनाया जाता था। तीन वर्ष वह राजा रहता था, सब काम उसके हुक्म से होता था। तीन वर्ष पूरा होने पर उसको नौका में बैठाते। विशेष-२ व्यक्ति नौका को पहुँचाने जाते और उसको भयानक जंगल में छोड़ देते जहां उसको जंगली जानवर खा जाते। जब तक वह राजा रहता, तब तक तो प्रसन्न रहता परन्तु जिस दिन उसको विदाई देते, उस दिन रोता जाता। एक बार एक चतुर व्यक्ति के हाथ में राज्य आ गया। तो उसने खूब कार्य किये, दूसरी ओर सड़कें बनवाई, कुए बनवाये, मकान बनवाये, सब सुख सुविधाएं कर दीं। तो तीन वर्ष बाद में लोगों ने कहा कि चलो। तो बोला चलो। वह खूब मस्त हो रहा था। तो लोगों ने सोचा कि यह इतना मस्त क्यों हो रहा है। उससे पूछा कि तुम हँस क्यों रहे हो ? तो वह बोला कि मैं तो हँसूगा, रोवोगे तुम। मैंने सब माल उस

पार कर दिया है, वे लोग मूर्ख थे कि हाथ में अधिकार आने पर उसका खूब उपयोग नहीं किया। आप भी सोच सकते हैं कि यदि हमें भी ३ वर्षों के लिये ऐसा अवसर मिले तो हम भी इसका बढ़िया उपयोग करें। तो हमें यह शरीर तीन वर्षों (अर्थात् कुछ वर्षो) के लिए मिला है। अतः इसमें तो परमात्मा का नाम लो, भजन स्मरण करो, पुण्य करो, या पाप करो। शुभ करो, अशुभ करो, स्वतन्त्रता मिली है। यदि अच्छे कार्य नहीं करते तो रोते हैं कि हाय, हाय मैंने अच्छे कार्य नहीं किए, भजन स्मरण नहीं किया। परन्तु यदि व्यक्ति भजन-स्मरण करता है, दान पुण्य करता है, सबका हित करता है, सेवा करता है, तो मस्ती से, आनन्द से मरता है। अतः धोखा मत खाओ, चेत करो, सावधान हो जावो। यहाँ धोखा खाने के लिए नहीं आये हो। अब तक जो समय बीत गया, सो बीत गया, अब समय व्यर्थ न करो। भजन, ध्यान करो, सेवा करो। यह शरीर को सजाना, इसका शृंगार करना, कितने दिनों चलेगा? राम राम राम राम। यदि कहें तो कहते हैं छूटता नहीं। तो छूटेगा नहीं क्या? अतः विचार करो, वह दिन आने वाला है जब यह सब छूट जायेगा। जिस दिन का स्मरण करके डर लगता है, भय लगता है, वह दिन आयेगा। और कब आयेगा, इसका पता नहीं क्योंकि मौत की कभी छुट्टी नहीं होती। मौत के लिए सब घंटा, सब मिनट, सब सैकिण्ड खुले हैं। परन्तु बैठे हैं निश्चिन्त। तो क्या करें? भगवान् का भजन करें। प्रत्येक समय राम, राम, राम, करें और सेवा करें। बस फिर बेड़ा पार है।

श्री हरि :

परिवार में व्यवहार

अपने स्वार्थ व अभिमान का त्याग करके "सब का हित कैसे हो" इस भावना से बर्ताव करें। परिवार में रहने की यह विद्या है। प्रत्येक काम को करने का एक तरीका होता है, एक विद्या होती है, एक रीति होती है और उसमें शिल्पकारीपना होता है, उसमें एक कारीगरी होती है। इसी प्रकार परिवार में रहने की भी एक विद्या है। आप बेटा हो तो माँ-बाप के सामने सपूत-से-सपूत बेटा बन जाओ। जिसके भाई हो तो उनके लिए आप श्रेष्ठ से श्रेष्ठ भाई बन जाओ। जिसके आप पति हो, उसके लिए आप श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पति बन जाओ। आप पिता हो तो पुत्र-पुत्री के लिये श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पिता बन जाओ। आपको जैसा जिसके साथ सम्बन्ध है, उसमें श्रेष्ठ सम्बन्ध आपका होना चाहिये। उनके साथ उत्तम से उत्तम बर्ताव करो तो और लोग भी अच्छा बर्ताव करेंगे। तब परिवार ठीक रहेगा। आप कह सकते हैं कि परिवार के सब लोग इस तरह सोचेंगे, तब ठीक होगा, एक आदमी क्या करेगा? बात ठीक है; परन्तु आप अच्छा बर्ताव करना शुरू कर दो। उस अच्छे बर्ताव के करने से परिवार का बर्ताव भी अच्छा होगा, और परिवार में बड़ी शान्ति होगी।

आप अपनी तरफ से ठीक बर्ताव करते रहो। उसमें एक और शूरवीरता ले आओ। रामायण में आया है—

"उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई ।। (५/४०/४) परिवार वाले आपके साथ खराब काम करें, आपको दुःख पहुँचावे, आपका अपयश करें, तिरस्कार करें अपमान करें तो भी आप उनका नुकसान मत करो। उनको दुःख मत दो। उनको सुख दो, उनका आदर करो, उनकी प्रशंसा करो। उनको कैसे आराम पहुँचे—इस भाव से आप बर्ताव करो। आपका परिवार आपके लिये दुःखदायी नहीं होगा। परिवार भी आपस में ठीक काम करेगा। इस जमाने में इसकी बड़ी भारी आवश्यकता है।

गीता में कहा है **"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"** (गीता २/४७)

अपनी ओर से आप परिवार वालों के साथ कर्त्तव्य कर्म करो। दो चीजें हैं। एक होता है कर्तव्य, और एक होता है अधिकार। मनुष्य अधिकार तो जमाता है, कर्तव्य नहीं करता। यह खास बीमारी है, जिसके कारण संसार में और परिवार में खटपट मचती है। वह अपना अधिकार रखना चाहता है, और कर्तव्य पालन करने में ढिलाई करता है, उपेक्षा करता है या कर्तव्य नहीं करता है। इसी से गड़बड़ी होती है। इस वास्ते अधिकार तो जमाओ मत और कर्तव्य में कमी किंचित-मात्र भी लाओ मत। उनके अधिकार की पूरी रक्षा करो। उनका जो हमारे पर हक लगता है, उस हक को ठीक निभाओ। आप उस पर अधिकार मत जमाओ कि हमारा लड़का है, हमारा कहना क्यों नहीं मानता? हमारी स्त्री कहना क्यों नहीं मानती? भीतर में यह अभिमान मत रखो। कहना है तो कह दो-प्रेम से, स्नेह से,

आदर से, अपनेपन से, पर भीतर से मत लगाओ कि स्त्री पुत्र मेरे कहने में ही चलें।

परिवार जितना आपके कहने में चलेगा, उतना ही आपको अधिक बन्धन होगा। जितना ही वह आपका कहना नहीं करेगा, उतनी आपकी मुक्ति होगी, उतना ही छुटकारा होगा, उतनी ही आप में स्वतन्त्रता होगी, उतना ही आपको लाभ है। जितना वे कहना अधिक करेंगे, उतना ही आपको बन्धन होगा। मनुष्य को यह अच्छा लगता है कि दूसरे लोग मेरे अनुकूल चलें, मेरा कहना मानें। परन्तु यह बन्धन कारक है। जहर चाहे मीठा ही हो, पर मारने वाला होता है। इसी प्रकार अनुकूलता आपको भले ही अच्छी लगे, पर वह बांधने वाली है। वे उच्छृंखलता करें तो भी आप अच्छा ही अच्छा बर्ताव करो। वे चाहे उम्रभर बुरा ही करें तो भी आप उकताओ मत। आपके लिये बहुत ही बढ़िया मौका है। आप अपनी तरफ से अच्छा करो। उनके बुरा करने पर भी आप अपना बर्ताव अच्छे से अच्छा करो।

एक सज्जन थे। उन्होंने कहा कि आप कुछ भी करो मेरे को गुस्सा नहीं आता। आप परीक्षा करके देख लो। दूसरे ने कहा कि आपको गुस्सा नहीं आता बहुत अच्छी बात है। तुमको क्रोध दिलाने के लिये मुझे कुछ न कुछ गड़बड़ी करनी पड़ेगी। तो मैं अपना स्वभाव क्यों बिगाड़ूँ ? तो सदैव यह भाव रहे कि हम अपना स्वभाव अच्छा रखें।

"स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः।" (१८/४५)

अपने कर्तव्य का ठीक तरह से पालन करो। उसका नतीजा अपने लिये भी ठीक ही होगा। परिवार के साथ

इस तरह से बरताव करो तो लोक और परलोक दोनों सुधरेंगे। यहाँ भी आपका भला होगा और वहाँ भी। गीता में कहा है **"नायं लोकोऽस्त्य यज्ञस्य कुतोऽन्यः"** गीता (४/३१) जो यज्ञ नहीं करता उसका यह लोक भी ठीक नहीं होता, फिर परलोक कैसे ठीक होगा ? यहाँ "यज्ञ" का अर्थ ही कर्तव्य-पालन है। अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता तो इस लोक में भी सुख नहीं पाता और परलोक में भी। जो अपना ही स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है, अपना ही आराम चाहता है, उसका संसार में भी आदर नहीं होता, और पारमार्थिक उन्नति भी नहीं होती। जो अपने स्वार्थ और अभिमान का त्याग करके दूसरों के हित के लिये काम करता है, वह संसार में भी अच्छा माना जाता है। परमार्थ भी उसका शुद्ध हो जाता है। वह लोक और परलोक दोनों जगह सुख पाता है।

कुछ लोगों में यह धारणा है कि हम आध्यात्मिक उन्नति करेंगे तो व्यवहार ठीक नहीं होगा और संसार का व्यवहार ठीक करेंगे तो परमार्थ सिद्ध नहीं होगा। वह धारणा सही नहीं है। गीता में इन दोनों का समन्वय है, अच्छा बर्ताव करो तो अपना लोक परलोक दोनों सुधर जायेंगे। व्यवहार भी अच्छा होगा और परमार्थ भी अच्छा होगा। व्यवहार में ही कला भर दो। जैसे—एक उदाहरण बतावें। कोई दयालु जज होता है तो वह न्याय नहीं कर सकता, और न्याय पूरा का पूरा ठीक करता है तो दया नहीं कर सकता। दया करे तो रियायत करनी पड़े, तो न्याय नहीं कर सकता। और न्याय ठीक-ठीक करे तो दया कैसे होगी ? परन्तु भगवान की ऐसी बात है कि भगवान दयालु भी हैं और

न्यायकारी भी हैं। इन दोनों में बाधा नहीं लगती, क्योंकि भगवान के कानून ही ऐसे बनाये हुए हैं कि उन कानूनों में दया भरी हुई है। जैसे भगवान ने कहा अन्तकाल में मनुष्य जिसका स्मरण करता है, उसी के अनुसार गति होती है।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावित.॥ गीता ८/६

यह कानून है कि जिस जिस भाव का स्मरण करता हुआ मनुष्य जाता है, वह आगे उसी भाव से भावित होता हुआ उसी जन्म को प्राप्त होता है। अन्तकाल के चिन्तन के अनुसार गति हा जाती है। "अन्त मति सो गति"। यह हुआ भगवान का कानून। भगवान कहते हैं कि अन्तकाल में मेरे को याद करे तो मेरे को प्राप्त हो जायगा। तो परमात्मा की प्राप्ति के लिये अन्तकाल में परमात्मा का चिन्तन करे तो परमात्मा की प्राप्ति हो जाय। इसमें दया क्या भरी हुई है ? जितने दामों में कुत्ते की योनि मिले उतने ही दामों में परमात्मा की प्राप्ति हो जाय। क्या खर्च हुआ बताओ ? कुत्ते को याद करते हुए मरो तो कुत्ता बन जाओगे और परमात्मा को याद करते हुए मरो तो परमात्मा की प्र प्ति हो जायगी तो इसमें अपने लिये भगवान ने कोई रियायत नहीं की। कानून है, इसका कोई भी पालन करलो, और इस कानून में कितनी दया भर दी। जिस चिन्तन से ८४ लाख योनि मिलती हैं, उसी चिन्तन से भगवत्प्राप्ति हो जाय, सदा के लिये जन्म मरण मिट जाय। यह कानून है। कानून भी है, दया भी है। इसी तरह से व्यवहार ठीक करने से परमार्थ भी सुधरता है। व्यवहार का काम ठीक करने से परमार्थ नहीं बिगड़ता। झूँठ, कपट, बेईमानी, धोखेबाजी करते हो तो

उससे परमार्थ बिगड़ता है। लोगों को इसमें लाभ दीखता है, पर लाभ है नहीं।

किसी के साथ कपट करोगे, द्वेष करोगे, चालाकी करोगे, ठगी करोगे तो कहा है "हाँडी काठ की चढ़े न दूजी बार।" काठ की हाँडी को एक बार चूल्हे पर चढ़ा दो, दुबारा चढ़ेगी क्या? इस वास्ते एक बार भले ही ठगी कर लो। उसके साथ खटपट हो जायगी। व्यवहार भी ठीक नहीं होगा। अपने स्वार्थ का त्याग और दूसरों के हित की भावना से व्यवहार ठीक होगा। व्यवहार ठीक होगा तो परमार्थ भी ठीक होगा। स्वार्थ और अहंकार का त्याग करने से ठीक काम होता है।

यह मिटा दिया तो शान्ति की प्राप्ति हो जायगी। व्यवहार भी ठीक होगा। और परमार्थ भी ठीक होगा। सीधे और सरल होकर चलो। वहुत ही लाभ की बात है। भगवत्-गीता व्यवहार में परमार्थ सिखाती है। गीता पढ़ो। गीता का अध्ययन करो। उस पर विचार करो और उसके अनुसार अपना जीवन बनाओ। देखो कितनी मौज होती है। कितना आनन्द आता है स्वाभाविक ही। गीता बतलाती है व्यवहार ठीक तरह से करो तो परमार्थ स्वतः सिद्ध हो जायगा। सिद्धान्त यह है कि परमार्थ तो स्वतः सिद्ध है। बिगड़ा तो व्यवहार ही है, और कुछ बिगड़ा ही नहीं है। न जीवात्मा बिगड़ा, न परमात्मा बिगड़ा, न कल्याण बिगड़ा है। बिगड़ा है केवल व्यवहार। व्यवहार शुद्ध करलो। सब काम सिद्ध हो जायगा।

श्री हरि :

क्रोध पर विजय कैसे हो ?

जैसे आप लोग हिसाब सीखते हो तो उस हिसाब का गुर सीख लेते हो तो वह हिसाब सुगमता से हो जाता है। बीकानेरी भाषा में उसीको उपराड़ी कहते हैं। उपराड़ी सीख लेने से हिसाब चट हो जाता है। बंगाली भाषा में उसीको शुभंकारी कहते हैं, वह सीख ले तो हिसाब हो जाता है। ऐसे ही हरेक प्रश्न का एक गुर होता है, उपराड़ी होती है, उसको आप लोग सीख लो तो प्रश्न का उत्तर स्वतः आ जायगा।

प्रश्न आया है कि हम क्रोध पर विजय कैसे पावें ? तो क्रोध पैदा किससे होता है ? गीता ने कहा—'काम से ही क्रोध पैदा होता है'—'कामात्क्रोधोऽभिजायते (२/६२)। तो वह काम (कामना) क्या है ? मनुष्य ने यह समझ रखा है कि 'धन, सम्पत्ति,' वैभव आदि की कामना होती है'—यह भी सब कामना ही है, पर मूल—असली कामना क्या है ? 'ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये'—यह जो भीतर की भावना है, इसका नाम कामना है।

आप पहले यह पकड़ लेते हो कि 'ऐसा होना चाहिये और वह नहीं होगा तो क्रोध आ जायगा, कोई वैसा नहीं करेगा तो, क्रोध आ जायगा। 'ऐसा नहीं होना चाहिये' और कोई वैसा करेगा या उससे विपरीत कहेगा तो क्रोध आ जायगा। तो ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये—यही क्रोध का खास कारण है।

ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये—इस कामना में कोई फायदा नहीं हैं; क्योंकि दुनियामात्र हमारे को पूछकर करेगी क्या ? हमारे मन के अनुसार ही करेगी क्या ? आप अपनी स्त्री, अपना पुत्र, अपना नौकर आदि से चाहते हैं 'कि ये हमारा कहना करें' तो क्या उनके प्राण नहीं हैं ? क्या उनकी कोई धारणा नहीं है ? उनकी कोई कामना, चाहना नहीं है ? ऐसा करूँ और ऐसा न करूँ—ऐसा उनके मन में नहीं है क्या ? अगर उनका मन इससे रहित है, तब तो वे आप कहें, वैसा कर देंगे, पर उनके मन में भी तो 'ऐसा करूँ और ऐसा न करूँ' ऐसी दो बातें पड़ी हैं तो वे आपकी ही कैसे मान लें ? आपकी ही वे मान लें तो फिर आप भी उनकी मान लो। जब आप भी उनकी मानने के लिये तैयार नहीं हैं तो फिर अपनी बात मनवाने का आपको क्या अधिकार है ? इस वास्ते 'ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये'—यह भाव मन में आ जाय तो 'ये ऐसा ही करें' अपना यह आग्रह छोड़ दो। कारण कि इस आग्रह में कारण अभिमान ! अर्थात् मैं बड़ा हूँ तो इनको मेरी बात माननी चाहिये'—यह बड़प्पन का अभिमान ही खास कारण है, और वैसा न करने से अभिमान ही क्रोधरूप से हो जाता है।

अगर आप शान्ति चाहते हो तो अभिमान को मिटाओ; क्योंकि अभिमान सम्पूर्ण आसुरी सम्पत्ति का मूल है। अभिमानरूपी बहडिया की छाया में आसुरी सम्पत्तिरूप कलियुग रहता है आसुरी सम्पत्ति के क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या, दम्भ, पाखण्ड आदि जितने अवगुण हैं, वे सब अभिमान के आश्रित रहते हैं क्योंकि अभिमान उनका राजा है। उसको आप छोड़ते नहीं तो क्रोध कैसे छूट जायगा ! इस वास्ते उस अभिमान को छोड़ दो।

छोड़ने का उपाय क्या है ? ये जो आपका कहना नहीं करते, वे तो आपके अभिमान को दूर करते हैं और वे आपका कहना करते हैं तो वे आपके अभिमान को पुष्ट करते हैं— यह बात आपके जचती है कि नहीं ? जो कहना नहीं करते, वे आपका जितना उपकार करते हैं, जितना हित करते हैं; कहना करने वाले ऐसा हित, उपकार नहीं करते। अगर आप अपना हित चाहते हो, तो आपके अभिमान में टक्कर लगे, उतना ही बढ़िया है अर्थात् वे कहना न करें, उतना ही बढ़िया है। कहना न करने में आपके लाभ हैं, हानि नहीं है। अभिमान पुष्ट करने के लिये वे बढ़िया हैं, जो कहना करते हैं परन्तु आपका अभिमान दूर करने के लिए वे बढ़िया हैं, जो कहना नहीं करते हैं। इस वास्ते आपको तो उनका उपकार मानना चाहिये कि 'वास्तव में हमारा हित इस बात में है।

यद्यपि वे जानकर के हित नहीं करते हैं कि भाई, तुम्हारा अभिमान दूर हो जाय, इस वास्ते हम आपका कहना नहीं करेंगे तथापि आपके तो फायदा ही हो रहा है, वे आपके अभिमान को दृढ़ नहीं कर रहे हैं अर्थात् आपका अभिमान दृढ़ नहीं हो रहा है। आप अपना हित चाहते हो कि अहित चाहते हो ? कल्याण चाहते हो कि पतन चाहते हो ? अगर आप कल्याण चाहते हो तो कल्याण आपका निरभिमान होने से है और निरभिमान आप तभी होंगे, जब आपका कहना कोई नहीं मानेगा। अगर कहना मानता रहेगा तो आपका कहना सब जगह डटा रहेगा और यही अभिमान है, यही आसुरी सम्पत्ति है—'**दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोध**, (१६/४) तो जो आपका कहना नहीं मानते, वे आप पर बड़ी भारी कृपा कर रहे हैं कि आपकी आसुरी सम्पत्ति हठाकर आपमें दैवी सम्पत्ति ला रहे हैं।

अब प्रश्न आया है कि कहना नहीं मानने से तो बालक उद्दण्ड हो जायेंगे ? वे उद्दण्ड हो जायेंगे और आप अभिमानी हो जायेंगे अर्थात् वे आपका कहना नहीं मानते तो उद्दण्ड हो जायेंगे और आपका कहना करेंगे तो आप अभिमानी हो जायेंगे—इन दोनों पर विचार करो। आप नहीं रहो तो मन-मानी करके उद्दण्ड तो फिर भी हो जायेंगे, परन्तु उनके बिना आपका अभिमान दूर कैसे होगा ? उद्दण्ड तो आपके बिना हो जायेंगे, पर आपका अभिमान तो उनके बिना दूर नहीं होगा। इस वास्ते आपको अभिमान तो पहले दूर कर ही लेना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि आप उन पर रौब नहीं जमाओगे तो आपकी सौम्यावस्था और निरभिमान-अवस्था का असर उन पर पड़ेगा तो वे उद्दण्ड नहीं होंगे, ठीक हो जायेंगे। आप कह दो कि भाई, ऐसा काम नहीं करना चाहिये फिर भी वे वैसा ही करें तो आप शान्ति से चुप-चाप रहो। कारण कि वे उद्दण्डता करेंगे तो उनको फल मिलेगा। फल मिलने से उनको चेत होगा फिर उनकी उद्दण्डता मिटेगी। उनको चेत होकर जो उद्दण्डता मिटेगी, वह उद्दण्डता आपके कहने से नहीं मिटेगी; क्योंकि उसके मन में तो अपनी बात भरी रहेगी और बात ऊपर से कलई जैसे रहेगी, वह कलई उतर जायगी तो इससे उदण्डता कैसे मिटेगी ? उद्दण्डता मिटाने का उपाय यही है कि आप अपने अभिमान को दूर करो।

मनुष्य को परिवार में रहना है तो परिवार में रहना सीख लो।.परिवार में रहने की यह विद्या है कि उनका कहना करो, उनके मन के अनुसार चलो। अपना जो कर्त्तव्य है,

उसका तो पालन करो और उनकी प्रसन्नता लो।

वह रहना क्या है ? आपके कर्त्तव्य का आप पर दायित्व है। आपका कर्त्तव्य क्या है ? स्त्री माने, न माने; पर आपका क्या कर्त्तव्य है ? पुत्र माने, न माने; पर आपका क्या कर्त्तव्य है ? भाई माने, न माने; पर आपका क्या कर्त्तव्य है ? मां-बाप माने, न माने; पर आपका क्या कर्त्तव्य है ? भोजाई और भतीजे मानें, न मानें; पर आपका क्या कर्त्तव्य है ? आप अपने कर्त्तव्य का ठीक तरह से पालन करें। वे अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं या नहीं करते—उधर आप देखो ही मत। क्योंकि, जब आप उनके कर्त्तव्य को देखते हो कि 'ये उद्दण्ड न हो जाय।' ऐसे समय में आप अपने कर्त्तव्य से च्युत ही हैं, आप अपने कर्त्तव्य से गिरते हो; क्योंकि आपको दूसरों का अवगुण देखने के लिये कर्त्तव्य कहाँ बताया है ? शास्त्रों में कहीं भी यह नहीं बताया है कि तुम दूसरों का अवगुण देखा करो; प्रत्युत यह बताया है कि यह संसार गुणदोष मय है—

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक।।

(मानस ७/४१)

दूसरों में गुण है, उनको तो भले ही देखो, पर अवगुण मत देखो। अवगुण देखोगे तो वे अवगुण आपमें आ जायेंगे और अवगुण देखकर के उनको उद्दण्डता से बचाने के लिये क्रोध करते हो तो क्रोध से नहीं बच सकते। इस वास्ते आप अपना कर्त्तव्य पालन करो। दूसरों का न कर्त्तव्य देखना है और न अवगुण देखना है। हाँ लड़का है तो उसको अच्छी शिक्षा देना आपका कर्त्तव्य है, उसको अच्छी बात कहो, इतना तो आपका कर्त्तव्य है, पर वह वैसे ही करे—यह आपका

कर्त्तव्य नहीं है। यह तो उसका कर्त्तव्य है। उसको कर्त्तव्य बताना—यह आपका कर्त्तव्य नहीं है। आपका तो सिर्फ इतना ही है कि भाई, ऐसा करना ठीक है, ऐसा करना ठीक नहीं है। अगर वह कहे—'नहीं-नहीं बाबूजी, ऐसे करें, तो कह दो—'अच्छा ऐसे करो! 'यह बहुत ही बढ़िया दवाई है। मैं नहीं कहने योग्य एक बात कह रहा हूँ कि 'अभी इस दवाई का मैं सेवन कर रहा हूँ।' आपको जो दवाई बतायी, यह बहुत बढ़िया दवाई है—आप कहो—'ऐसा करो' और अगर वह कहे नहीं हम तो ऐसा करेंगे, अच्छा, ठीक है—ऐसा करो—

रज्जब रोसन कीजिये कोई कहे क्यूँ ही।
हँसकर उत्तर दीजिये हाँ बाबाजी यूँ ही॥

अन्याय हो, पाप हो तो उसको अपने स्वीकार नहीं करेंगे। अपने तो शास्त्र के अनुसार बात कह दी और वे नहीं मानते तो शास्त्र क्या कहता है? क्या उनके साथ लड़ाई करो! या उन पर रोब जमाओ! आपका तो केवल कहने का अधिकार है—**'कर्मण्येवाधिकारस्ते'** (२/४७) और वे ऐसा ही मान लें—यह फल है. आपका अधिकार नहीं है—**'मा फलेषु कदाचन'** (२/४७) आपने अपनी बारी निकाल दी, बस। आपकी हुण्डी चढ़ गयी। कर्त्तव्य तो आपका कहना ही था, करा लेना कर्त्तव्य आपका थोड़ा ही है! वैसा करे, यह कर्त्तव्य उनका है। अपने तो कर्त्तव्य समझा देना है। उसने कर्त्तव्य पालन कर लिया तो आपके कल्याण में कोई बाधा नहीं और वह नहीं करेगा तो उसका नुकसान है, आपके तो नुकसान है नहीं, क्योंकि आपने तो हित की बात कह दी। यह बहुत मूल्यवान बात है!

नारायण, नारायण, नारायण।

श्री हरि:

ममता न होने से फायदा

मूल में ममता छोड़ना चाहते नहीं। यहाँ ही गलती होती है। ममता छूटती नहीं—यह बात नहीं है; आप छोड़ना चाहते नहीं। अब छोडने की चाहना पैदा कैसे हो—यह खास प्रश्न है। इसमें आप ध्यान देकर के सुन लें और खूब ठण्डे हृदय से विचार करें कि जिन चीजों के साथ आपकी ममता है अर्थात् अधिक से अधिक शरीर के साथ, इसके बाद कुटुम्बी, धन-सम्पत्ति आदि के साथ जो ममता है तो ये ममतावाली चीजें सदा साथ रहेंगी क्या? जैसे आप पहले किसी शरीर में थे, तो उस समय शरीर, कुटुम्बी आदि अपने दीखते थे, पर आज उनकी याद भी नहीं है। तो आज जिनमें आप ममता कर रहे हो, ये चीजें मरने के बाद याद तक नहीं रहेगी, क्योंकि ये वस्तुएँ तो छूटेंगी ही। वस्तुएँ तो छूटेंगी, परन्तु उनमें आपका जो राग है, ममता है—ये मरने के बाद भी आपके साथ रहेंगे। तो यह ममता सिवाय जन्म-मरण, दुःख देने के कुछ लाभ देने वाली नहीं है।

पदार्थ छूटेंगे, ममता वाली वस्तुएँ छूट जायेंगी, परन्तु ममता भीतर बनी रहेगी। वह ममता अगाडी आसक्ति पैदा करके कामना पैदा करके बन्धन में ही बन्धन में डालेगी, इसके सिवाय कुछ नहीं। जब छूटने वाली वस्तुओं से ममता छोड़नी है तो इसमें जोर क्या आवे? जरूर छटने वाली वस्तुओं से ममता छोडने से निहाल हो जाओगे, मुक्त हो

जाओगे और ममता रहते हुए मौत आवेगी तो भी वस्तुओं के साथ सम्बन्ध-विच्छेद होगा तथा त्याग करने से भी वस्तुओं से सम्बन्ध-विच्छेद होगा। परन्तु मौत में पराधीनता है और त्याग में स्वाधीनता है। मौत में अशान्ति है और त्याग में शान्ति है। मौत में बाहर से सम्बन्ध छुट जाता है, पर भीतर से ममता आसक्ति रहने से महान दुःख होगा और त्याग में भीतर से सम्बन्ध छूट जाता है तो बाहर से सम्बन्ध छूटने पर भी हानि नहीं है, प्रत्युत महान् आनन्द होगा।

मेरी तो एक ही प्रार्थना है कि आप इन बातों पर दलील दो, सुनो और विचार करो। क्योंकि ममता रखने से हानि ही हानि है और ममता छूटने से आपके किसी तरह की हानि नहीं होगी, दुःख नहीं होगा और सुख में कमी नहीं होगी। जैसे, इस मकान को अपने सब भाई अपना नहीं मानते तो क्या इसमें बैठने का सुख अपने को नहीं मिलता है। क्या यहाँ के प्रकाश का सुख हमारे को नहीं मिलता है ? यहाँ पंखे चलते हैं, इनसे हमारे को सुख नहीं मिलता है क्या ? यहाँ पर माइक पर बोलते हैं, सुनते हैं तो इससे हमारे को सुख नहीं मिलता है क्या ? तात्पर्य यह हुआ कि अपनापन छूटनें पर भी सुख मिलना जायगा नहीं ! क्योंकि अपनी ये चीजे नहीं हैं और सुख ले रहे हैं तो सुख लेने पर भी हम निर्लेप हैं अर्थात् यहाँ से चल दें, पंखा टूट जाय, बिजली जल जाय तो अपने कोई चिन्ता नहीं। फरक क्या है ? ममता नहीं। जिसकी ममता है, उसके चिन्ता लग जायगी, खलबली मच जायगी। खलबली मचाने के, अगाडी जन्म देने के सिवाय ममता से कोई-सा भी फायदा नहीं है और नुकसान कोई-सा ही बाकी नहीं है। यह बनिया जाति बड़ी स्वार्थी होती है।

यह नुकसान के तो नजदीक नहीं जाती और नफा इनको अच्छा लगता ही है। तो ममता छोड़ने से नुकसान कुछ नहीं है और रखने से सभी नुकसान है, फायदा कोई-सा नहीं है। क्योंकि, पहले यह चीजें थी नहीं और अगाडी ये रहेंगी नहीं। इनमें झूठी ममता कर लेते हैं तो बार-बार दुःख पाना पड़ेगा। इस बात को आप समझो और शंका हो तो अभी पूछो !

आप जिसको अपना मानते हो; कुटुम्ब को, धन को, घर को, शरीर को अपना मानते हो कि ये मेरे हैं। तो क्या ये पहले मेरे थे ? और क्या फिर अपने रहेंगे ? थे नहीं और रहेंगे नहीं। दूसरी बात, आप जिनमें ममता रखते हो, उनको बदल सकते हो क्या ? 'छोरा मेरा है' तो उसको भी अपनी आज्ञा के अनुसार चला सकते हो क्या ? अपने शरीर को भी चाहे जैसा स्वस्थ रख सकते हो क्या ? कम-से-कम उसको मरने तो दोगे ही नहीं ? धन आपके पास है, उसको रख लोगे ? है हाथ की बात ! शरीर बीमार भी हो जायगा, मर भी जायगा छोरा भी नहीं मानेगा। धन भी चला जायगा। ममतावाली वस्तुओं को रखने की ताकत किसी की हो, तो बोलो ! तात्पर्य यह हुआ कि पहले थी नहीं, अगाड़ी रहेगी नहीं और अभी भी उसके ऊपर आपका आधिपत्य चलता नहीं। उसके परिवर्तन करने में आप समर्थ नहीं। अनुकूल बनाने में समर्थ नहीं, रखने में समर्थ नहीं। पहले भी अपनी थी नहीं और छूट जायगी जरूर—यह पक्की बात है।

हरएक बात में सन्देह होता है। आप ऐसा कर लेंगे ? ऐसा हो भी जाय और न भी हो। अमुक जगह जाना है, अमुक आदमी से मिलना है, तो क्या मिल लोगे ? मिल भी सकते हैं और नहीं भी। बेटे का ब्याह कर दिया तो पोता जनमेगा ?

पता नहीं ! होगा और नहीं भी होगा । इस प्रकार हरएक काम में होगा और नहीं भी होगा—ऐसा होता है; पर एक दिन मरना होगा और नहीं भी होगा—इसमें विकल्प है क्या ? हो भी सकता है और नहीं भी, मरे चाहे, न भी मरे—ऐसा हो सकता है क्या ? जब मरना जरूरी है तो मरने पर ममता वाली सब चीजें छूटेंगी तो अपनापन—ममता पहले छोड़ दो, तो निहाल हो जाओ । अन्त में छूटेगी तो सही ! क्यों माजनो गमाओ अपनो, चोरी बेइज्जती के सिवाय क्या मिलेगा ? बताओ आप लोग इतने बैठे हो ? रखने से फायदा होगा, वह बताओ और छोड़ने से नुकसान हो, वह बताओ ?

आप कहोगे कि ममता के बिना कुटुम्ब का पालन कैसे होगा ? ममता के बिना पालन ज्यादा होता है और बढ़िया होता है । एक बात याद आ गयी । शर्म की बात है । वह साधु हो चाहे, ब्राह्मण हो, आपका हित ममता रखने वाला ज्यादा कर सकता है या ममता न रखने वाला ज्यादा कर सकता है— ठण्डे हृदय से आप सोचे । आपको चेला बना ले कि यह मेरा चेला है, शिष्य है—ऐसा करके आपके साथ विचार करे और एक चेला न बनकर आपको बात कहे तो ममता वाला ज्यादा लाभ देगा कि बिना ममता वाला । यह आप सोचलो आपके अकल में आती होगी, नहीं तो शंका कर लेना ।

स्वार्थवाला सच्ची बात कहेगा कि बिना स्वार्थ वाला ? और सुधार किस बात से होगा । आप भी समझते हो कि आपका हित सम्बन्ध जोड़ने में है कि सम्बन्ध तोड़ने में । ममता रखने में सिवाय हानि के कुछ नहीं है और छोड़ने में सिवाय लाभ के कुछ नहीं है, लाभ ही लाभ है कोरा । इन बातों पर विचार करो ?

'नारायण, नारायण, नारायण'

श्री हरि :

सत्संग एवं संसार का प्रभाव

प्रश्न :–साधन, भजन, सत्संग करते हैं फिर भी संसार के प्रवाह का असर पड़ जाता है। क्यों ?

उत्तर:–देखो भैया ! मैं एक बात कहता हूँ उसकी तरफ ध्यान दें। संसार का प्रवाह किस पर पड़ता है ? गहरा विचार करना। संसार का प्रभाव संसार पर ही पड़ता है। स्वरूप पर संसार का प्रभाव नहीं पड़ता। प्रभाव पडा और अभी प्रभाव नहीं रहा। प्रभाव निवृत्त हो गया। प्रभाव का असर नहीं हुआ। ये ज्ञान है कि नहीं। इसका उत्तर दो। और एक बात मन में आती है कि ये सत्संग में तो जंच जाता है पीछे नहीं रहता। पीछे मत रहो। सत्संग में जंच गई है न। तो पीछे रहना तुम देखना चाहते हो यही एक बहुत बड़ी गलती है। उसका सुधार कर लो अभी। सुधार यह है कि यह व्यवहार में नहीं रहता तो अन्तः करण में नहीं रहता, और अन्त:करण में वृत्तियां तो व्यवहार होंने से होगी। अगर वृत्तियां न हों तो व्यवहार कैसे होगा ? भोजन ही कैसे होगा ? बोलना भी कैसे होगा ? चलना भी कैसे होगा ? कुछ भी बोलना न हो तो कैसे होगा ? तो व्यवहार में तो व्यवहार की वृत्तियां होंगी। पर व्यवहार और एकान्त दोनों का ज्ञान किसी को होता है कि नहीं होता है। ज्ञान जिसको होता है उस ज्ञान में व्यवहार और एकान्त है। इस बात को समझ लो तो निहाल हो जाओ। अभी-अभी-अभी। मानो व्यवहार और व्यवहार

रहित अक्रिय अवस्था। अक्रिय और सक्रिय दो हैं। दोनों ही ये प्रवृत्ति हैं। अक्रिय भी प्रवृत्ति है और सक्रिय भी प्रवृत्ति है। क्योंकि ये सापेक्ष हैं। ये तो तुमने सुना ही होगा कि सक्रिय प्रवृत्ति है और अक्रिय प्रवृत्ति नहीं है, परन्तु अक्रिय भी प्रवृत्ति है और सक्रिय भी प्रवृत्ति है। अक्रिय और सक्रिय जिस प्रकाश में प्रकाशित होते हैं उस प्रकाश में प्रवृत्ति नहीं है। वह प्रकाश एकान्त में बैठे हुए साफ दीखता है, व्यवहार करते हुए नहीं दीखता है। तो न दीखने पर भी व्यवहार में प्रकाश तो रहता ही है। अगर नहीं रहे तो प्रकाश का ज्ञान किसको हो रहा है ? प्रवृत्ति भी तो जानने में आती है। आती है न ? तो जानना पन तो रहता है कि नहीं ? केवल जानना है उसमें प्रवृत्ति निवृत्ति दोनों नहीं है। बड़ी सीधी बात है, बहुत ही सरल बात है कि प्रवत्ति और निवृत्ति दोनों जिससे प्रकाशित होते हैं, उसमें प्रवृत्ति निवृत्ति कुछ नहीं है। न प्रवृत्ति है न निवृत्ति है। समझ में आ गया न ? तो इसमें तुम डटे रहो। वृत्तियों का एक रूप देखना छोड़ दो आज से। वृत्तियां एक रूप बनी रहें। ये आज तुम छोड़ दो, मेरे कहने से। ये जब तक पकड़े रहोगे, तब तक तुम्हें सन्तोष नहीं होगा। और ये आज ही छोड़ दो। अभी-अभी। व्यवहार में कैसे ही रहो। पीछे परमार्थ में रहो। क्योंकि वास्तव में नित्य रहने वाली चीज तो प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों का प्रकाशक है। तो निवृत्ति को क्यों इतना महत्त्व देते हो। वास्तविक तो प्रकाश है। दोनों जिस प्रकाश से प्रकाशित होते हैं, वह प्रकाश वास्तविक है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों अवास्तविक हैं। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों सापेक्ष हैं। प्रवृत्ति की दृष्टि से निवृत्ति है और निवृत्ति की दृष्टि से

प्रवृत्ति है। वास्तव में जो प्रकाश है उसमें न निवृत्ति है न प्रवृत्ति है। ठीक है न ये ? तो इसमें तुम्हारी स्थिति है। मेरे कहने से मान लो। और ये जो बहम है कि प्रवृत्ति जब तक रहती है और बीच में जो असर पड़ता है, तब तक हम तो ठीक नहीं हुए, ये छोड़ दो। ध्यान देना बात को। किसके द्वारा छूटता है ? कि निवृत्ति आई, प्रवृत्ति गई। निवृत्ति गई, प्रवृत्ति आई।

कहां गई, कहां आई बताओ। प्रवृत्ति-निवृत्ति का अभाव हुआ कि नहीं ? अभाव हुआ तो द्वारा की जरूरत क्या ? द्वारा, एक ऐसा आग्रह छोड़ दो। किसके द्वारा कि तुम्हारे द्वारा। तुम खुद के द्वारा ऐसी वृत्ति निरन्तर रहे ये आग्रह छोड़ दो। इसमें हानि नहीं होगी। बहुत साफ है इसमें सन्देह नहीं है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों प्रकाशित होती हैं स्वतः और ये होती रहें। अपने कोई मतलब नहीं है। दुनिया मात्र में प्रवृत्ति और निवृत्ति होती है कि नहीं ? जागृत में काम करते हैं। नींद में काम नहीं करते। दीखता है न। उससे तुम्हारे क्या फर्क पड़ता हैं ? दुनियां में जो प्रवृत्ति होती है उससे तुम्हारे में फर्क पड़ता है क्या ? तुम्हारे प्रकाश में जो स्वयं प्रकाश स्वरूप है उसमें फर्क नहीं पड़ता है न। तो इसकी चिन्ता क्यों करते हो ? ये जो संसार की प्रवृत्ति निवृत्ति है वही तुम्हारे शरीर की प्रवृत्ति निवृत्ति है। दोनों बिल्कुल एक धातु की हैं।

संसार के प्रभाव में वह जाते हैं जिससे सन्तोष नहीं होता। हां, तो गलती करते हो। सन्तोष क्यों नहीं होता है ? इसका कारण है कि आप समझते हैं कि अन्तःकरण निर्विकार रहे। ये आपने पकड़ लिया। अन्तःकरण निर्विकार नहीं होता। ये पकड़ छोड़ दो। अन्तःकरण निर्विकार रहना

चाहिए, ये छोड़ दो। निर्विकार कैसे रहेंगे, जब यह कार्य है प्रकृति का ? ये निर्विकार कैसे रहेगा ? इसमें तो विकार होगा।

प्रश्नः—महाराज जी ! एक बात कहूँ, आप कहते हैं न कि ये छोड़ दो। तो एक भय सा लगता है। ऐसा विचार आता है कि छोड़ने से कहीं मेरा पतन न हो जाय।

उत्तरः—इस वास्ते मैंने बार-बार कहा कि मेरे कहने से छोड़ दो। यह क्यों कहा ? क्योंकि भय है तुम्हें। तुम्हारे भय का असर है मेरे पर। तुम भयभीत हो रहे हो। इस वास्ते कहता हूँ तुम डरो मत। जब तक ये पकड़ है तब तक वास्तविक स्थिति नहीं होगी। ये वास्तविक स्थिति में बाधक है। तो ये पकड़ ही बाधक है। और कोई बाधक है नहीं। प्रकाश में पतन होता ही नहीं। प्रवृत्ति निवृत्ति दोनों में प्रकाश समान रहता है। ये बताओ उसमें फर्क पड़ता है क्या ? उसमें फर्क नहीं पड़ता तो उसका पतन कैसे हो जायेगा ? तुम मानते हो अन्तःकरण में निर्विकारता आ जाय। अगर आ जाय तो—

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांङ्क्षति।। गीता १४।२२

ये कहना कैसे बनता ? प्रकाश प्रवृत्ति और मोह अगर न होता, तो 'न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृतानि कांङ्क्षति कैसे कहते ?

प्रश्न :—ये तो महाराज जी उन महापुरुषों की बात है जिनको साक्षात्कार हो गया।

उत्तरः—तो वे महापुरुष हम ही हैं। वे महापुरुष अलग नहीं हैं। हम ही महापुरुष हैं। प्रकाश का नाम ही महापुरुष है। डरो मत इसमें। बिल्कुल डर नहीं। ये जो सामान्य प्रकाश है इस स्थिति वाले को ही महापुरुष कहते हैं। महापुरुष कहो चाहे ब्रह्म कहो। उस सामान्य प्रकाश में

क्या फर्क पड़ता है ? तो सामान्य ब्रह्म है वह एक है। एक तो भय छोड़ दो। एक अगाड़ी कुछ विलक्षणता होगी, इस आशा को छोड़ दो। ये दो छोड़ दो। ये दो ही बाधक हैं असली। निषिद्ध आचरण की इच्छा हो जाती है। तो निषिद्ध आचरण छूट जायेगा। ये सुनकर डर लगता है न। तो छोड़ते डर लगता है इससे सिद्ध होता है कि निषिद्ध आचरण को आपने महत्व दिया। और महत्व दे करके छोड़ते हैं तो कैसे छूटेगा ? आदर आपने कर दिया उसका। उपेक्षा करो। एक करना, एक न करना दो चीज हुई। और एक उपेक्षा तीसरी चीज हुई। क्रिया में तो विधि करना है, निषिद्ध नहीं करना है। परन्तु भीतर में विधि और निषेध दोनों से उदासीन रहो। क्यों कि विधि और निषेध दोनों दीखते हैं किसी प्रकाश में। उस प्रकाश का संबंध न विधि के साथ है न निषेध के साथ है। विधि का संबंध निषेध के साथ है। निषेध निवृत्ति करने के लिए विधि है। विधि रखने के लिए विधि नहीं है। इस वास्ते विधि निषेध भय और आशा ये दोनों छोड़ दो। ख्याल में आयी कि नहीं बात ? मेरी बात समझ में आयी कि नहीं ? विधि और निषेध में विधि का लोभ है और निषेध का भय है। और भय और लोभ जब तक रहेंगे, तब तक आपकी स्वरूप में स्थिति नहीं होगी। और ये भय और लोभ हैं इसकी बेपरवाही कर दो। ये छट जायेंगे। बेपरवाही करो केवल बेपरवाही। आ गया भय तो आ गया। लोभ हो गया तो हो गया। आपकी अवस्था में कहता हूं हर एक के लिए मैं नहीं कहता हूं। हर एक इस बात को समझेगा नहीं, उल्टा असर हो जायेगा। और आपके उल्टा असर नहीं होगा, नहीं होगा, नहीं होगा। मैं धोखा देता हूं क्या ? बताओ ? क्यों कि ये जब समझ में आ गई कि विधि और

निषेध ये करना चाहिए और ये नहीं करना चाहिए, ये दोनों होते हैं और मिटते हैं, आते हैं और जाते हैं, और आने-जाने वालों की रहने वाले पर कोई जिम्मेवारी नहीं है, रहने वाले पर कोई असर नहीं है, रहने वाले में कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है, न निषेध से बनता है न विधि से बनता है! और न निषेध से बिगड़ता है न विधि से बिगड़ता है उसका बनता बिगड़ता है ही नहीं, तो आप पर असर कैसे पड़ेगा?

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥ १४।२३

वह विचलित होता ही नहीं है। 'गुणैर्यो न विचाल्यते, योऽवतिष्ठति नेङ्गते' मानो ज्यों का त्यों रहता है ये अर्थ हुआ इसका। भय और आशायें दो छोड़ो। भय और आशा में संसार मात्र बंधा है। किसी प्रकार का न भय हो न किसी प्रकार की आशा हो। जितना चुप रह सको, चुप रहो। और हे नाथ! मेरे से नहीं छुटतो कहते रहो। कह सकते हो कि नहीं? जितना मिनट चुप रह सको चुप रह जाओ इस शरणागति में और चुप रहने से बड़ी भारी ताकत है। तो आप निर्बलों को बल आ जायेगा। और वह कार्य हो जायेगा। आप में तो आ जायेगा बल और काम हो जायेगा सिद्ध। आपमें बल आयेगा निर्विकार रहने से। और सिद्ध होगा शरण होने से। जंची कि नहीं? ठीक बैंठी कि नहीं बात? चुप होने से शक्ति आती है। ये बात अनुभव सिद्ध है कि बोलते-बोलते बोलना बन्द हो जायेगा। पड़े रहो बोलने की शक्ति आ जायेगी। शक्ति स्वतः आती है निष्क्रिय होने से। और सक्रिय होने से शक्ति नष्ट होती है। जितने भोग संग्रह के लिए काम करते हैं उनमें थकावट होती है। नींद लेने से थकावट दूर हो जाती है शक्ति आती

है। तो निष्क्रिय होने से करने की शक्ति आती है ये तो अनुभव है न ? तो निष्क्रिय रहने से शक्ति आ जायेगी। और हे नाथ ! ऐसा कहने से काम सिद्ध हो जायेगा। रामबाण है। ये बढ़िया। इसमें सन्देह हो तो बोलो। तो शरण होकर निसन्देह हो जाओ। ये तुम्हारा इलाज असली है। इस अवस्था में चुप होने में परिश्रम नहीं करना है। कोई क्रिया हो गई तो हो गई, नहीं हुई तो नहीं हुई। अपने मतलब नहीं। अपनी तरफ से कोई क्रिया न तो करो और न ही ना करो। दोनों से उदासीन रहो। क्रिया हो तो होती रहे। अभी-अभी सिद्धि हो गई तत्वज्ञ जीवन-मुक्त महापुरुष जिसको कहते हैं उसकी।

राम, राम, राम,
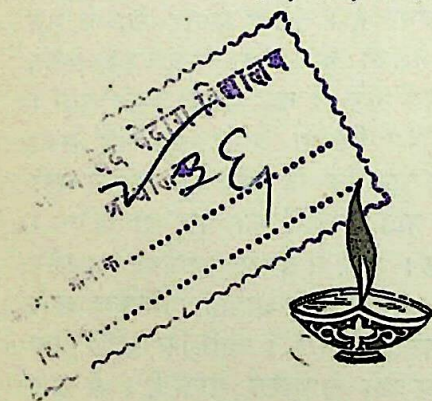
मुद्रक : अजन्ता प्रिन्टर्स, घी वालों का रास्ता, जयपुर
फोन : 44057

श्री हरि :

श्रद्धेय स्वामीजी श्री रामसुखदासजी महाराज का प्रकाशित उपलब्ध साहित्य

	पृष्ठ संख्या
कल्याणकारी प्रवचन (प्रथम भाग)	१७२
कल्याणकारी प्रवचन (द्वितीय भाग)	९६
जीवनोपयोगी प्रवचन	१२८
तात्त्विक प्रवचन	८४
भगवन्नाम	५६
भगवान से अपनापन	८८
कल्याणकारी प्रवचन अंग्रेजी अनुवाद (सजिल्द) ।	१७२

–: गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित :–

गीता परिचय	२१६
गीता का ज्ञान योग (श्रीमद्भगवद्गीता के १३वें व १४वेंअध्यायों की विस्तृत व्याख्या)	४३२
गीता का भक्तियोग (श्रीमद्भगवद्गीता के १२वें व १५वें अध्यायों की विस्तृत व्याख्या)	४४०
गीता की सम्पत्ति और श्रद्धा (श्रीमद्भगवद्गीता के १६वें व १७वें अध्यायों की व्याख्या)	२२४
गीता का सार (श्रीमद्भगवद्गीता के १८वें अध्याय की व्याख्या)	४७२
गीता का सारभूत श्लोक (श्रीमद्भगवद्गीता के १८वें अध्याय के ६६वें श्लोक की व्याख्या)	६८